

UNIVERSAL  
LIBRARY

**OU\_182166**

UNIVERSAL  
LIBRARY



OUP—902—26-3-70—5,000

**OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY**

Call No. **H 83.1**

Accession No. **H 4234**

Author **A52 G**

Title **अमृतस्य**

**२१.५ मि. ५१.१ १९८८**

This book should be returned on or before the date last marked

## अन्य रचनाएँ



- उपन्यास— १—बीज २—हाथी के दाँत ३—नागफनी का देश
- कहानी— १—जीवन के पहलू २—इतिहास ३—कस्बे का एक दिन  
४—लाल घरती ५—भोर से पहले ६—कठघरे
- समीक्षा— १—नयी समीक्षा २—साहित्य में संयुक्त मोर्चा  
३—शान्ति के योद्धा प्रेमचन्द
- अनुवाद— १—नूतन आलोक २—फाँसी के तख्ते से ३—अग्निदोचा  
४—आदि विद्रोही
- यात्रा संस्मरण—सुबह के रंग

)

मिट्टी

अमृत राय

हंस प्रकाशन  
इलाहाबाद



प्रकाशक

हंस प्रकाशन

इलाहाबाद

H 4234

मुद्रक

भार्गव प्रेस

इलाहाबाद

आवरण

कृष्णचन्द्र श्रीवास्तव

द्वितीय संस्करण

नवम्बर १९६०

मूल्य

तीन रुपया



## अनुक्रम

|                           |   |     |
|---------------------------|---|-----|
| लाशें                     | : | १३  |
| यावच्चन्द्र दिवाकरौ       | : | २०  |
| मशीन का खेल               | : | ३०  |
| विस्टारिया के फूल         | : | ३७  |
| सगे संबंधी                | : | ४३  |
| नाजूक आपरेशन              | : | ४६  |
| तराजू                     | : | ५४  |
| गणितज्ञ                   | : | ६१  |
| ईंट-पत्थर                 | : | ७३  |
| मछली चारा ले भागी         | : | ७८  |
| एक गुमनाम आदमी            | : | ६०  |
| चमार की औलाद              | : | ६६  |
| लाट साहब की आमद           | : | १०४ |
| हजार मन राख और एक चिनगारी | : | १११ |
| रस-गन्ध                   | : | ११७ |
| गीली मिट्टी               | : | १३२ |



## निवेदन

आज अपनी कहानियों का यह सातवाँ संग्रह आपके हाथ में देते हुए मुझे बड़ी खुशी हो रही है; लेकिन साथ ही साथ जो कुछ काँप भी रहा है। पता नहीं आप यह भेंट स्वीकार करते हैं कि नहीं। एक मन भरोसा दिलाता है कि जैसे अब तक आपने मुझे अपनाया है वैसे ही इस बार भी अपनायेंगे। लेकिन सच बात है कि थोड़ा डर भी लग रहा है। क्योंकि इधर रुचि शायद कुछ बदली है। आंचलिक कथाओं का, ग्राम कथाओं का एक ज्वार-सा आया हुआ है। इतना कि ग्राम कथाओं के नाम पर बहुत-सा नकली माल भी, गाँव की बोली का मुलम्मा चढ़ाकर पेश किया जा रहा है। ऐसी कहानी भूले-भटके ही कहीं देखने को मिलती है जिसमें आज का हमारा गाँव, उसका बदलता हुआ चेहरा, उसकी नई सामाजिक और मानसिक स्थितियाँ व समस्याएँ अपनी जिन्दा सच्चाई के साथ हमारे सामने उजागर हो जाती हों। अक्सर शहरी मध्यवर्ग की मनःस्थितियाँ ही गँवई परिवेश की खूँटी पर टाँग दी जाती हैं। यह चीज कुछ कुछ वैसी ही है जैसी कि गाँव की थीम पर बनी हुई बम्बईया फिल्म या बंगाल के 'फोटो प्रिन्ट' की साड़ी और तंग चोली पहने दिल्ली के 'गैलार्ड' में बैठकर लिपस्टिकित होठों से अंग्रेजी गिटपिटाती हुई कोई पंजाबी सुन्दरी।

यह चीज अपने आप में काफी नहीं है लेकिन तो भी उस ग्राम-कथा को बहुत सफल मानना चाहिये जिसमें अपने गाँव से बिछड़े हुए एक व्यक्ति के दर्द की मीड़ मिलती है। वही दर्द हर चीज को एक रोमानी रंग में रंग देता है। वह यथार्थ के प्रति न्याय नहीं है; मगर खैर कुछ तो है।

गाँव की कहानी लिखने की ओर लोगों का ध्यान गया है, यह वास्तव में एक बड़ी शुभ सूचना है; लेकिन अगर वह केवल एक फैशन या अधिक से अधिक एक नॉस्टैलजिया (घर की याद) बनकर रह जाता है तो इसे दुर्भाग्य ही मानना चाहिये। दायित्व जितना बड़ा है उसका निर्वाह भी उसी निष्ठा से करना होगा। नयी सांकेतिकता, नये राग-बोध और नयी भावभूमियों की बात कहने से ही काम नहीं चलेगा क्योंकि यह बहुत मुमकिन है कि आप जिसे अपनी नई उपलब्धि समझ रहे हैं उसमें नये गुल-बूटों की कशीदाकारी के अलावा और कुछ भी नया न हो, न जीवन-दृष्टि न प्राण-रस। गाँव के नये सामाजिक संदर्भों को समझे और खोले बिना वास्तविक अर्थों में नई भाव-भूमि पर पहुँचना कठिन है क्योंकि वस्तु-सत्य से हटकर भाव-भूमि का कोई अस्तित्व नहीं है। यथार्थ की गहरी पकड़ की कमी गँवई शब्दों की फुलझड़ी से भी पूरी नहीं होगी, और न कितने ही यत्न से साधा हुआ 'लोकल कलर' का चित्रण स्वयं एक साध्य बन सकता है क्योंकि यथार्थवादी कथाकार के लिए वह केवल साधन है यथार्थ के अन्तर्निहित सत्य तक पहुँचने का, उसको पहचानने का, उसके भीतर सोये हुए किसी नये जीवन-बीज को प्रस्फुटित करने का। नये राग-बोध और नयी सांकेतिकता के नाम पर बातों को उलभे-उलभे, उखड़े-उखड़े, टूटे-टूटे वाक्यांशों में कहना, हो सकता है कि महान कला हो; हो सकता है अनुभूतियों की अतल गहराई में उतरने पर इन अनोखे पनडुब्बों के पास बस इन अस्फुट शब्दों का पाथेय बच जाता हो, लेकिन इसमें सन्देह नहीं कि यह चीज वास्तविक जीवन की गहरी और साफ पकड़ की कमी को ढाँकने के लिए एक चादर का काम भी दे सकती है। वह खैर जो भी हो, यह तो अपनी-अपनी रुचि की बात है, कोई कैसी शैली अपनाता है कोई कैसी। लेकिन तब फिर आवश्यक इतना ही है कि लेखक इस आत्म-वर्चना से अपने को मुक्त रखे कि वह तात्सताय, चेखोव, गोर्की या प्रेमचन्द की परम्परा का 'संश्लिष्ट' विकास कर रहा है, क्योंकि वस्तुतः वह उस सजीव परम्परा से मुंह मो

कर, अपने अर्द्ध-ज्ञान के सहारे, योरप की पिछले लगभग तीन दशक से चल रही डिकेडेन्ट—पतनशील—साहित्य-धारा की ऊपरी चमक-दमक के फेर में पड़कर उसी के अन्ध अनुकरण की ओर बढ़ रहा है।

इस प्रसंग में यह भी लक्ष्य करने की बात है कि प्रेमचन्द की कहानियों में गाँव की समूची जिन्दगी क्योंकर अपने हजार मुँहों से बोलती है और क्यों उसे शब्दों की बैसाखी का सहारा नहीं लेना पड़ता। इसीलिए कि उस लेखक की दृष्टि उन बुनियादी सामाजिक प्रश्नों पर केन्द्रित है जो शहर-गाँव सब जगह एक है और वातावरण की गुलकारी को हो अपना साध्य बनाने में लेखक को रुचि नहीं है।

हमारे इन ग्राम-कथाकारों के लिये भी यह राह खुली है लेकिन इसके लिए सामाजिक दायित्व की गहरी चेतना अपेक्षित है। और मुसीबत यह है कि हमारे ये मित्र मुँह से भले कुछ हाँ हूँ करें, सामाजिक दायित्व की बात से काफी भड़कते हैं। इसमें उनको 'प्रगतिवाद' की गंध आती है। जहाँ यह सच है कि प्रगतिवाद साहित्यकार के सामाजिक दायित्व और साहित्य की सोद्देश्यता की अपनी परिभाषा को संकीर्ण से संकीर्णतर करता गया, यहाँ तक कि साहित्य का गला घुँट गया, वहाँ यह भी सच है कि संतुलित रूप में साहित्यकार का सामाजिक दायित्व और साहित्य की सोद्देश्यता, दोनों ही बातें अपनी जगह पर ठोक हैं। किसी महान् नैतिक दृष्टि के बिना महान् साहित्य, कम से कम गद्य साहित्य, की सृष्टि कभी सम्भव नहीं हुई। लेकिन जहाँ तक मेरे देखने में आता है, सम्प्रति यह संतुलन कुछ बिगड़ा हुआ-सा है; सोद्देश्यता के अतिरेक की प्रतिक्रिया कुछ इस मनोभाव में होती दिखाई पड़ती है कि साहित्य का प्रयोजन या उद्देश्य अपने से बाहर कुछ भी नहीं है, उसकी बात ही बेकार है, साहित्य की प्रतिष्ठा को घटानेवाली है।

मैं ऐसा नहीं मानता। मैं स्पष्ट शब्दों में साहित्यकार के सामाजिक दायित्व और साहित्य की सोद्देश्यता के सिद्धान्त को स्वीकार करता हूँ। मैं समझता हूँ कि सससे साहित्य की प्रतिष्ठा घटती नहीं बढ़ती है। लेकिन

उसके लिए साहित्य की मर्यादा को भी समझना जरूरी है। जिस तरह मर्यादा का उल्लंघन करने से व्यक्ति की प्रतिष्ठा की हानि होती है, उसी तरह साहित्य जब अपनी मर्यादा का उल्लंघन करके सोद्देश्यता की ओर दौड़ता है तब उसकी प्रतिष्ठा की हानि होती है और उसे प्रचार की संज्ञा प्राप्त होती है।

अपने गाँव से मेरा सम्बन्ध टूट-सा गया है। मैं अब शहर में रहता हूँ और अपने आसपास जो दुनिया देखता हूँ, जिस तरह वह मेरे नीम-शहराती और नीम-देहाती मन को छूती है, कभी विवेक को भँभोड़ती है और कभी मार्मिक संवेदनाओं को भीगने का अवसर देती है, उसी की कहानी सीधे-सादे शब्दों में कहना मुझे अच्छा लगता है। आजकल शैली और शिल्प की चर्चा भी बहुत होने लगी है। मेरे पास वह सब कुछ भी नहीं है। सीधे-सादे ढंग से अपनी बात कहता हूँ।

बहुत-से लोगों के पास अपने-अपने अंचल हैं; मेरे पास अपना कोई विशिष्ट अंचल नहीं जिसकी मैं शरण गूँ। और न मुझको इसकी जरूरत मालूम होती है। जिन्दगी हर जगह एक सी है और निगाह हो तो लिखनेवाले को कथा-बीज सब जगह मिल जाते हैं। अस्तु, ये आपको जानो-पहचानी दुनिया की जानी-पहचानी कहानियाँ हैं। लेकिन इनमें निगाह मेरी है इसलिए मुमकिन है आपको इनमें कुछ नयापन मिले, बस इतना कि हाँ, देखा तो था, लेकिन ऐसे नहीं देखा था।

बहुत-से लोगों को देखता हूँ, वह कोई दूर की कौड़ी लाने की, कोई अनोखी बात अनोखे ढंग से कहने की फिन्न में रहते हैं। मेरा मन कुछ दूसरी ही तरह बना है; मुझे अपनी यहीं की मिट्टी में ठीकरे बीनने से सन्तोष है।

वही ठीकरे आपको पकड़ा रहा हूँ।

—अमृत

ਗੋਲੀ ਮਿਟੀ



जाड़े का मौसम है। आज पाँच रोज से सर्दी बहुत बढ़ गयी है। मसूरी में बर्फ गिरी है, इलाहाबाद में लोगों के दाँत बज रहे हैं।

आज छुट्टी का दिन है। इस वक्त दोपहर के तीन बजे हैं।

विनय के बाबू किसी सरकारी दफ्तर में हेड क्लर्क हैं।

आज उन्होंने सबेरे से छुट्टी मनायी। काफी देर में सोकर उठे। एक प्याली चाय बिस्तर में ही पी। खुद बाजार जाकर तरकारी-भाजी लाये। छुट्टी के दिन वह ऐसा ही करते हैं। इससे भाव-ताव का पता रहता है और नौकर ठग नहीं पाता। आज पति-पत्नी ने निश्चय किया है कि इस बड़ी हुई सर्दी का जवाब देने के लिए एक कम्बल खरीदना जरूरी हो गया है।

लिहाजा दोपहर के खाने के बाद हेडक्लर्क साहब ने घंटे भर लोट लगायी और फिर पति-पत्नी कंबल खरीदने निकले। हेडक्लर्क

साहब ने अलगनी पर से अपना कोट-पतलून उतारा, गाँठ-लगाई टाई हार की तरह गले में डालकर कस ली। पत्नी ने प्याजो रंग की एक सस्ते जार्जेट की साड़ी और हरे रंग के चमकते हुए गुलबूटेदार सैंडिल पहन लिये। खूब चमचम करता हुआ एक हैंडबैग भी हाथ में लटका लिया। हैंडबैग लेकर चलने का अभी उनको अभ्यास नहीं हुआ है, इसलिए थोड़ी लाज लगती है। मगर कोई बात नहीं, इसी तरह धीरे-धीरे आदत पड़ जायेगी।

शिच्चा, सुरचि, रूप—मिसेज हंडू के पास क्या नहीं है। रूप ऐसा कि उनके जाने-अनजाने सैकड़ों आँखें उनको देखकर निहाल होती हैं। सुरचि ऐसी कि सब उन्हें फैशन की मलका समझते हैं। दिल्ली का लेटेस्ट फैशन आपको इलाहाबाद में देखना हो तो रूप और यौवन की इस सजी हुई पुतली को देखिए। रही शिच्चा, तो इसमें भी वह किसी से हेठी नहीं। शुरू से कॉन्वेन्ट में पढ़ी हैं। फरटि से अंग्रेजी बोलती हैं। शिच्चा के लिए इससे बड़ी सनद और क्या हो सकती है ?

पति आला अफसर हैं। ऊँची तनख्वाह पाते हैं। जितना कमाते हैं, ठाठ से उड़ाते हैं। सन्तान नहीं है। कोई चिन्ता नहीं है।

मिसेज हंडू दिल्ली में देखकर आयी हैं, आजकल एक मोटे किस्म का ऊन बहुत चला है। मिस्टर हंडू के लिए उसी का कोट बुनेंगी। जल्दी के कारण (मिस्टर हंडू की बीमारी का तार पाकर) दिल्ली से वह ऊन नहीं ले पायीं। यहाँ ग्रीनवेज के जैसी 'च्चायस' भला काहे को मिलेगी, सवाल ही नहीं पैदा होता, मगर खैर काम-चलाऊ चीज मिल जायेगी।

तो जनाब नूर मुहम्मद के यहाँ यही ऊन देखना है, हीटर ठीक करवाना है, चीनी जूतेवाले के यहाँ से अपना नया सैंडिल उठाना है और—और भी छोटे-मोटे कई काम हैं।

राकेश माथुर बहुत जहीन लड़का है। अर्थशास्त्र लेकर एम० ए० कर रहा है। पढ़ने का बड़ा शौकीन है। दुनिया की कौन सी चीज़ है जिसकी उसे जानकारी नहीं है। स्पेंसर और मिल को उसने पढ़ा है, रूसो और वास्तोयर को उसने पढ़ा है, इमर्सन और थोरो और एडवर्ड कारपेंटर को उसने पढ़ा है। यानी कि जहाँ तक पढ़ने की बात है कुछ भी ऐसा नहीं है जो कि उसने नहीं पढ़ा है और उसकी किताबों में लिखा है कि न्याय के ही आधार पर टिकाऊ समाज कायम हो सकता है।

कहने की गरज़ कि राकेश बहुत क्राबिल आदमी है और क्राबिल ही नहीं भला आदमी भी है। पास में पैसे रहने पर वह दोस्तों को सिनेमा दिखाने के लिए और कॉफी हाउस में कॉफी पिलाने के लिए हरदम तैयार रहता है।

डाक्टर सब्बरवाल के लेक्चर्स शुरू हो गये हैं। जथार ऐंड बेरी की 'इंडियन इकनामिक्स' और ऐसी ही एक दो पुस्तकें और भी, आज ही सरोदनी होंगी वर्ना क्लास में फिसड्डी रह जाने का खतरा है।

लिहाज़ा राकेश माथुर ने अपनी दो मोटी-मोटी उँगलियों से क्रीम निकालकर पोता, रुमाल में अच्छा विलायती इतर लगाया, दिल्ली का टेलर्ड तीन सौ का सूट पहना, अपने नाम के आदि अक्षर 'आर' की टाई और बेल्ट लगायी, चमचमाते हुए जूते पैर में डाले और साइकिल उठाई।

छुट्टी का दिन है। दोपहर कॉफी हाउस या किसी रेस्तरां में गुज़ारने के लिए आज दोस्तों की अच्छी बड़ी टोली मिलेगी। लतिका भी 'ज़रूर शॉपिंग करने आयेगी।

लतिका और आई० ए० एस०—राकेश के जीवन का ध्रुवतारा यही है।

## गोली मिट्टी

नगरसेठ पूनम चन्द बागला को रामचन्दानी ज्वेलर्स के यहाँ काम था। अपनी ज़रूरत की ज्वेलरी सेठ जी हमेशा कलकत्ते से खरीदते हैं, लेकिन आज कुछ ऐसी ही बात आ पड़ी है। तेरह साल की एक लड़की आज उनके यहाँ आयेगी। आयेगी यानी लायी जायेगी। सेठ जी को यही उम्र सब से ज्यादा पसंद है। वह कुछ समझती भी है और कुछ नहीं भी समझती। 'आपकूँ क्या कहेंगा। उसके साथ खेलने में जो मजा आता है बाबू....'

उसी त्रयोदशवर्षीया को देने के लिए कोई चीज़ चाहिए। लिहाजा सेठ पूनम चंद बागला नाखूनी किनारे को धोती, कमखाब का बंद गले का लम्बा कोट, सर पर रेशमी पाग और पैर में आइने की तरह चमकता हुआ पंप पहनकर और मुँह में पान की बारह गिलौरियाँ और हजार रुपये सेर का ज़र्दा रखकर चमकते-दमकते हुए अपनी पैकड कनवर्टिबिल में रामचन्दानी के यहाँ चले।

संयोगवश, नगरपालिका के अध्यक्ष, नगरपिता पंडित रामसहाय चतुर्वेदी और विश्वनाथ सिंह, जिन्होंने चुनाव में चतुर्वेदी जी का विरोध किया था—ये दोनों सज्जन भी अपने काम से उसी रोज़ उसी समय सिविल लाइन पहुँचे।

इत्तफ़ाक़ से हाजी करामतउल्ला और संयोग से ठाकुर गंगासिंह क्षत्रज्ञ भी टहलते हुए वहाँ जा निकले।

सरदार पटेल मार्ग और महात्मा गान्धी मार्ग के चौराहे पर जब बिनय

## लाशें

के बाबू, मिसेज हंडू, राकेश माथुर, नगरसेठ पूनम चंद बागला, नगरपिता रामसहाय चतुर्वेदी, विरोधी पक्ष के नेता विश्वनाथ सिंह, फलों के मशहूर ताजिर हाजी करामतउल्ला और ठाकुर गंगा सिंह चत्त्रज्ञ पहुँचे तो उन्होंने वहाँ पर एक छोटी-मोटी भीड़ देखी ।

भीड़ में एक बड़ी बात यह होती है कि वह खामखाह लोगों को अपनी तरफ खींचती है । दो चार खोमचेवाले भी पहुँच गये थे । किसी ने समझा बाजोगर का तमाशा हो रहा है । किसी ने समझा मंतर पढ़कर बिना दर्द के दाँत उखाड़नेवाला होगा । किसी ने समझा सफ़ेद बाल जड़ से काला करने का कोई तेल बिक रहा है ।

गरज कि ये लोग भी जाकर खड़े हो गये । सेठ पूनम चंद को तो यों भी खड़े होना था क्योंकि उनकी मोटर का रास्ता रुका हुआ था ।

मगर उन सबको बड़ी मायूसी हुई जब उन्होंने देखा कि वहाँ पर तो बस एक नंगी लाश पड़ी है जो न जाने कब से इसी तरह पड़ी है और हजारों मक्खियाँ उस पर भिनभिना रही हैं । तमाशाइयों के कुछ गुच्छे या तो खड़े हैं और पान-मूँगफली खा रहे हैं या स्याह मिट्टी के इस ढेर को टुक खड़े होकर देख लेते हैं और आगे बढ़ जाते हैं ।

हेडक्लर्क साहब की पत्नी, विनय की अम्मा ने आँचल नाक पर रखते हुए कहा—लगता है गरीब रात ठिठुरकर मर गया....कितनी बदबू आ रही है !

विनय के बाबू ने रुमाल नाक पर रखे-रखे कहा—मरने को इसे और कोई जगह नहीं मिली ! मगर मैं कहता हूँ यहाँ की म्युनिसिपैलिटी को क्या हो गया ?

नगरपिता पंडित रामसहाय चतुर्वेदी ने कहा—सब लोग बात कहने को हो जाते हैं। म्युनिसिपैलिटी को यही एक काम तो है नहीं कि मुर्दे ढोती फिरे। हम लोग कहाँ-कहाँ नजर रखें, आये दिन तो कोई न कोई मरता रहता है !

विरोधी पक्ष के नेता विश्वनाथ सिंह ने कहा—दिन-रात पहाड़ ही तो ढकेलते रहते हैं ! न कुछ करना न धरना। सरासर आपकी अयोग्यता है। मैं इस आदमी का जनाजा निकालूँगा तब आपको आटे-दाल का भाव मालूम होगा।

हाजी करामतउल्ला ने अपने दोस्त से कहा—हिन्दू की लाश है !

राकेश माथुर ने ठिठोली करते हुए अपने साथी से कहा—अबे, मुर्दे को छतने गौर से क्या देख रहा है। चल काफ़ी पी जाय। कम्बल ने मज़ा किरकिरा कर दिया।

फ़ेशन की मलका मिसेज़ हड्डू ने फ़्रांसीसी सेंट से उस हिन्दोस्तानी बदबू को दबाते हुए, नाक सिकोड़कर कहा—ओह, हाउ ऑफ़ुल !....और जल्दी जल्दी पैर बढ़ाती हुई चीनी जूतेवाले की दूकान की तरफ़ निकल गयीं।

नगरसेठ पूनम चंद बागला ने उड़ती हुई एक निगाह उस लाश पर डाली और ड्राइवर से कहा—जोर से हार्न दो तब लोग हटेंगे।

उनकी आँखों के सामने इस वक़्त कुछ और ही तस्वीरें थीं !

ठाकुर गंगासिंह चन्ना ने कुछ नहीं कहा और करीब में हो बेचू पान-  
वाले के यहाँ जाकर बोले—भ्राज मगही है न ?....लगाना चार बोड़े।

उसी वक़्त एक ज़लील औरत, भोरगंज की एक तवायफ़, सारी रात  
और दिन का इतना वक़्त किसी शरीफ़ज़ादे की सोहबत में बिताकर अपने  
घर जा रही थी। उसकी नज़र भी इस लाश पर पड़ी। उसने ताँगा रुक-  
वाया और अपने भड़कीले बटुए में से पाँच रुपए का एक नोट निकालकर  
अपनी नोकरानी को देते हुए कहा—बिट्टन, जा किसी बज़ाज के यहाँ से  
तीन गज़ मारकोन लाकर इस बदनसीब को ढँक दे।

---

‘कॉफ़ी हाउस, अहा कॉफ़ी हाउस !’

—रजनीश जी† के एक वार्तालाप से ।

मिगर मुश्किल यह है कि अब आप जानना चाहेंगे यह रजनीश जी कौन हैं । तो जनाब यह जानने के लिए देखिए इस कहानी का एक अकेला फ़ुटनोट ।....आपको पूछने का पूरा अधिकार है कि फ़ुटनोट इतनी ही बात क्यों कहता है, आपके हाथ में तो क़लम है, आप और कुछ भी लिख सकते थे ।

सो प्यारे पाठको, निवेदन है कि लेखक का कर्म सरल नहीं है । यों तो लेखक का कर्म कभी भी बहुत सरल नहीं था पर आजकल तो और भी नहीं । इतने लोग लट्टु लिये खोपड़ी-भंजन करने को तैयार खड़े रहते हैं कि लिखते समय भूल से इधर का एक शोशा उधर हुआ नहीं क समझिए जान पर बनी । निदान यदि

शायद यह दिव्य कवि

---

ढोलढमाकपुर के एक अनन्य प्रतिभा-सम्पन्न नये कवि

और कुछ नहीं तो अपने स्वास्थ्य के प्रति मंगलकामना से प्रेरित होकर मुझको कलम बहुत सँभालकर चलाना पड़ता है। पुराने नीतिकार ने जो सत्य ब्रूयात् प्रियं ब्रूयात् न ब्रूयात् सत्यमप्रियम् वाली बात कही थी वह यों ही नहीं कह दी थी, उसके पीछे भुक्तभोगी का कटु तत्त्वज्ञान था।

अन्तर्कथा यों है कि श्रावस्ती में पुष्पदंत नाम का एक श्रेष्ठी रहता था। उसकी पत्नी नागरिका अद्वितीय सुन्दरी थी। नागरिका की अपने पति पुष्पदंत से बिल्कुल नहीं पटती थी (जिससे क्या सिद्ध हुआ ? जिससे यह सिद्ध हुआ कि पति-पत्नी में बिगाड़ होना कोई आज की बात नहीं है, बहुत पुरानी बात है। जातक काल तक का प्रमाण तो इसी कहानी से मिलता है।)

हाँ तो नागरिका की अपने पति पुष्पदंत से बिल्कुल नहीं पटती थी क्योंकि उसका नाम जितना सुन्दर था उसका रूप उतना ही मोटा, भद्दा, थलथल। उसकी अंकशायिनो बनना नागरिका के लिए विषयान से भी घोरतर दण्ड था। वह तो अपने पति को विषदन्त कहती थी। मगर खैर छोड़िए, वह अप्रासंगिक बात है। हमें इसमें क्या कि वह अपने पति को क्या कहती थी या नहीं कहती थी। कहानी के प्रयोजन की बात तो बस यह है कि नागरिका का प्रेम-संबंध अपने ही एक नौकर से हो गया जो वर्षों में तो नितान्त काला था, जैसे आबनूस का कुन्दा, मगर उसका शरीर ऐसा सुन्दर, ऐसा गठा हुआ था कि जैसे किसी महान् मूर्तिकार ने अपनी कुशल छेनी-हथौड़ी से पुरुष के पुरुषत्व को साकार कर दिया हो। उद्दीपक को देखकर (उस धीवर-जातीय युवक का यही नाम था) न जाने कितनी सतवन्ती-कुलवन्ती नारियों का मन डोल चुका था। अतः इसमें आश्चर्य की कोई बात न थी कि नागरिका को भी उद्दीपक से गहरा प्रेम हो गया जो समय बीतने के साथ साथ प्रगाढ़तर होता गया, और इस प्रेम-संबंध से नागरिका को पाँच सन्तानें हुईं। अति उत्तम। भगवान् जो करता है भले के लिए करता है। जहाँ तक पुष्पदंत की बात थी, उसको या तो इस प्रणयाचार का पता नहीं था या पता रहते हुए उसने उधर से

आख मूंद ली थी और प्रसन्न था क्योंकि बिना कोई पूंजी लगाये घर बैठे उसको सन्तान लाभ हो रहा था (जिससे क्या प्रमाणित हुआ ? जिससे यह प्रमाणित हुआ कि नियोग की जो प्रथा आजकल अज्ञानवश बुरी समझी जाती है, किसी समय समाज में उसका बड़ा प्रचलन था, यहाँ तक कि बहराइच के सेठ पुष्पदंत ने भी इसको मान्यता दे रखी थी और स्वयं अपने घर में । ) खैर तो कहने का मतलब यह कि धीवर जाति के उस असाधारण सुष्ठु युवक उद्दीपक ने श्रेष्ठ पुष्पदंत और उसकी अद्वितीय रूपसी पत्नी नागरिका के बीच बिगड़ी हुई बात काफी हद तक बना दी ।

और समय बीतता रहा, जैसा कि उसका स्वभाव है ।

लेकिन इसी बीच क्या हुआ कि पुष्पदंत के पड़ोस में एक कविराज जी आकर ठहरे । कविराज जी कवि भी थे और कविराज भी । यानी जब वह खरल न घुटवाते होते तो कविता करते होते और कविता न करते होते तो खरल घुटवाते होते । दोनों ही दशाओं में हर समय उनकी रसायनशाला में कोई न कोई चूर्ण या अवलेह पकता रहता । इस प्रकार शरीर और मन दोनों के स्वास्थ्य की व्यवस्था उनके यहाँ थी ।

श्रेष्ठ पुष्पदंत के पड़ोस में रहते हुए तीक्ष्णबुद्धि कविराज जी ने शीघ्र ही दो अत्यन्त महत्वपूर्ण बातों का अनुसन्धान कर लिया—एक तो यह कि पुष्पदंत के पास असंख्य रत्नराशि है और दूसरी यह कि उसकी रूपसी पत्नी नागरिका का प्रणय-संबंध अपने भृत्य उद्दीपक से है ।

कविराज जी आदमी बहुत भले थे और सभी भले मनुष्यों की भाँति किंचित् लोभ उनके मन में भी था । उनके जी में आया कि इस बेचारे पुष्पदंत का कुछ उपकार करना चाहिए और उसी प्रसंग में यदि दस-पाँच सहस्र स्वर्णमुद्राएँ हस्तान्तरित होकर पुष्पदंत के यहाँ से मेरे यहाँ पहुँच जाती हैं तो इसमें क्या बुराई है ।

अतः रुपये में सोलह आने उपकार की दृष्टि से उन्होंने एक खरड-काव्य लिखा जिसमें नागरिका और उद्दीपक के प्रेम का सरस आख्यान वर्णित था । सृष्टि इतनी सार्थक हुई कि उसमें नागरिका का समर्पित

नारोत्व और उद्दीपक का उद्दाम पौरुष दोनों स कार हो उठे ।

अपने आख्यानक में उन्होंने पुष्पदंत को ऐसे व्यक्ति की भूमिका प्रदान की जिसने अपनी कायिक दुर्बलता के कारण अपनी स्त्री से हाथ धोया ।

पाठको, इसमें सन्देह के लिए रंचमात्र स्थान नहीं है कि कवि का मन बिलकुल स्वच्छ था, उसमें कहीं कल्मष न था । सोचिए, कल्मष होता तो उसने ऐसी पुस्तक स्वयं पुष्पदंत को क्यों समर्पित की होती ? उसने तो संभवतः यही सोचा होगा कि लाओ इस बेचारे पुष्पदंत की आँखें खोल दूँ, इसे कुछ पता नहीं है कि इसकी पीठ पीछे क्या-क्या गुल खिलते हैं । गुह्य बात को गुह्य ढंग से कहने के विचार से ही उन्होंने काव्य का माध्यम अपनाया । लेकिन बात कुछ ऐसी हुई कि रससिद्ध कवि को उस सृष्टि में कथा की अन्योक्ति खुलते देर न लगी । निदान पुष्पदंत ने बहुत अपमानित अनुभव किया जो कि स्वाभाविक ही था । तथापि खेद को ही बात है कि पुष्पदंत अपने प्रति किये गये इस उपकार के मूल्य को नहीं समझा और उसने एक रोज चार गुण्डे लगाकर कविजी की ऐसी कुन्दी करायी कि उनको कविता नयनजल बनकर आँखों से निःसृत हो चली । कई सप्ताह तक उन्होंने शय्या का सेवन किया और तभी उनके मुख से वह अमर नीतिवाणी निकली—

सत्यं ब्रूयात् प्रियं ब्रूयात् न ब्रूयात् सत्यमप्रियम् ।

इसके बाद इस श्लोक का जो अंश आजकल विद्यार्थियों को पढ़ाया जाता है, उसके संबन्ध में विद्वानों का मत है कि वह छेपक है । शुद्ध पाठ, जो बहुत शोध के उपरान्त हस्तगत हुआ है, निम्नोक्त है—

अप्रियं सत्यं ब्रूते पुष्पदंतः लट्ठं ददौ—(लट्ठं ददौ, मुहावरे का प्रयोग । लट्ठ दिया अर्थात् लट्ठ मारा । )

अस्तु वह तो जो होना था सो हुआ, लेकिन कितने अन्याय की बात है कि सत्य भाषण के अपराध में बेचारे ऐसे कवि को डंडा खाना पड़ा जो इतना प्रगतिशील और इतना क्रान्तिकारी था कि उसने आज से

डेढ़ हजार साल पहले, जब केवल राजा और सामंत काव्य के नायक हुआ करते थे, एक अस्पृश्य-जातीय धीवर युवक को अपने काव्य का नायक बनाया। इतना ही नहीं साहित्य के प्रति उसकी दृष्टि इतनी सोद्देश्य थी कि काव्य के उपसंहार वाले खण्ड तक पहुँचते-पहुँचते उसमें कवि और कविराज, वेद और आयुर्वेद दोनों एकाकार हो गये थे और कवि ने लिखा था—अपने स्नायु-दौर्बल्य के कारण पुष्पदंत जिस स्त्री-सुख से वंचित रहा उसको प्राप्त करने के लिए नरहरि आयुर्वेद भवन द्वारा निर्मित नवरत्न कल्प का सेवन कीजिए....

मगर खैर छोड़िए, कथा की इस अन्तर्कथा में इतने विस्तारपूर्वक जाने से अपने को क्या लाम। मैं तो बस इतना कहना चाहता था कि सच बोलना चीज अच्छी है मगर वह भी मौका-महल देखकर करना चाहिए। मेरे लिए तो यह बात और भी विशेष रूप से लागू है क्योंकि मैं बहुत बदनाम लेखक हूँ। मैं कहीं की बात करूँ, किसी के बारे में लिखूँ, लोग भट उसमें इशारे डूँढ़ने लगते हैं। इसीलिए मुझे कलम उठाते डर लगता है।

अब आप ही सोचिए, रजनीश जी कवि हैं तो क्या, हैं तो आखिर आदमी। वह या तो पतले होंगे या मोटे या विख्यात गणितज्ञ अमित राय की भाषा में, मिडिल साइज के, जैसा कि मैं हूँ। लेकिन मुश्किल यह है कि अगर मैं कहीं रजनीश जी को उनके असली रूप में चित्रित कर दूँ—दुहरे बदन के, गोल-मटोल, शंकर जी की बटिया की तरह—तो अवश्य पारागंज के मेरे एक कवि-मित्र मुझसे रुष्ट हो जायेंगे। और अगर यह सोचकर कि किसी का जीवन-वृत्त तो रहा हूँ कहानी लिख रहा हूँ, रजनीश जी को लंबा, दुबला-पतला, नफ़ीस, नाजूक बयान कर दूँ तो मैं अच्छी तरह जानता हूँ मेरे एक दूसरे कवि-मित्र मेरी शकल से चिढ़ने लगेंगे। लिहाजा यही समझिए कि रजनीश जी न गोरे हैं न काले, न पतले हैं न मोटे, न बुड्ढे हैं न जवान, न उनका कोई रूप है न रंग। बस यही समझिए कि वह निराकार ब्रह्म हैं और किसी प्रकार इन्हें इन्द्रिय-

गोचर नहीं किया जा सकता। मगर खैर जो बात उन्होंने कही वह बड़ी मार्के की थी—कॉफी हाउस, अहा कॉफी हाउस—और उसी को मैंने हथिया लिया। गोसाईं जी ने किष्किन्धा-काण्ड में कितने पते की बात कही है—आप को आम खाने से मतलब कि पेड़ गिनने से।

अब इस संचिप्त भूमिका के बाद असल कहानी प्रारंभ होती है। लेकिन यहीं पर इतना और बतला दूँ कि ऊपर नागरिका, पुष्पदंत और धीवर युवक उद्दीपक का जो आख्यान दिया गया है वह मुझे स्वयं रजनीश जी से मिला है जो आजकल उसी कवि पर रिसर्च कर रहे हैं। अपनी रिसर्च के सिलसिले में उनको उस कवि के बारे में ऐसी-ऐसी बातों का पता लगा है जिनका अब तक किसी को कोई सुराग भी नहीं मिला था। पर एक बात रजनीश जी काफ़ी शिकायत के स्वर में कह रहे थे कि पुराने कवि, चित्रकार, मूर्तिकार, स्थपति सृष्टियाँ तो बड़ी-बड़ी करते थे, लेकिन बड़े दुर्भाग्य का विषय है कि उनके अष्टा का नाम किसी को नहीं मालूम। बतलाइए, अजंता के चित्र किसने बनाये ? किसी को नहीं मालूम। बाघ की गुफाओं के चित्रकार कौन थे ? किसी को नहीं मालूम। मार्तण्ड, कोणार्क, भुवनेश्वर, मीनाक्षी—इन सब मंदिरों के स्थपति कौन थे ? किसी को नहीं मालूम। यही बात साहित्य के क्षेत्र में भी दिखायी देती है। काव्य उच्च कोटि का है, कवि का पता नहीं। ज्योतिष का ग्रंथ अद्भुत है, ग्रंथकार का पता नहीं। बहुत से तो अपना नाम भी नहीं देते लेकिन जो नाम देते भी हैं, वह भी बस नाम ही देते हैं। शेष बातों पर वह भी मौन रहते हैं। लोग कहते हैं यह उन प्राचीनों की विनयशीलता थी। कला उनके लिए साधना थी। अपनी साधना की उपलब्धि वे लोगों के समक्ष उपस्थित करके दृष्टिपथ से अलग हो जाते थे क्योंकि, जैसा कि वे सोचते थे, महत्व उपलब्धि का था साधक का नहीं।

यह बात नहीं कि इस तर्क में कोई बल नहीं है, लेकिन रजनीश जी का विचार था कि इतनी विनयशीलता ठीक नहीं, यह तो एक तरह का पागलपन है। मैंने अमुक कलाकृति का सृजन किया, क्यों न संसार जाने

कि मैं ही उसका स्रष्टा हूँ ? इसमें कौन सी बुराई है ? यह सब झूठी माँडिस्टी है, एक तरह का बन्तूपन है ।

बात कहते कहते रजनीश जी का स्वर आवेश में चढ़ जाता और तब, दूसरी मेजों पर बैठे हुए रजनीश जी के बन्धु-बान्धव भी इस बहस में खिंच आते । और कहने की ज़रूरत नहीं कि और कहीं हों न हों, काँफ़ी हाउस में उनके समर्थक भरे पड़े थे ।

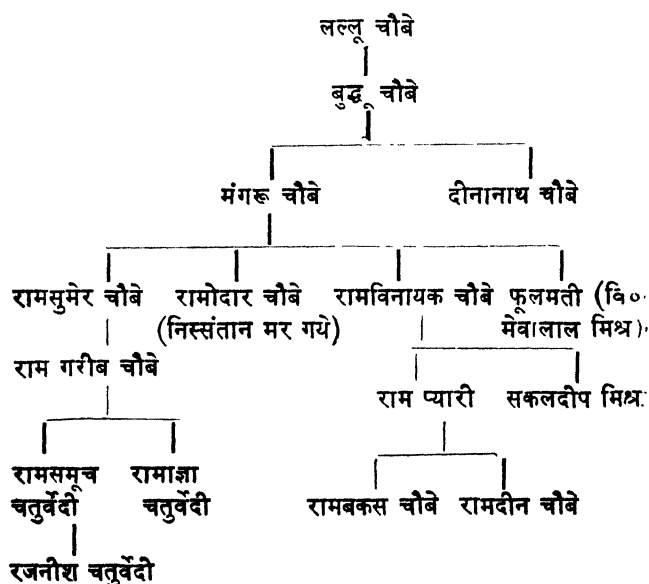
लेकिन अगर इन समर्थकों को छोड़ भी दें तो नरहरि कवि के विषय में शोध करने के सिलसिले में रजनीश जी के अपने अनुभवों का प्रमाण उनको इस निष्कर्ष पर पहुँचाने के लिए काफ़ी था कि कलाकार के लिए ऐसा करना अनुचित है कि वह अपनी तथाकथित विनयशीलता के पीछे अपने व्यक्तित्व को तिरोहित कर दे और आनेवाली पीढ़ियों के लिए अपना कोई परिचय न छोड़ जाय ।

—देखिए न, मुझी को कितने पापड़ बेलने पड़ रहे हैं । बड़ी-बड़ी मुशकिलों से तो नाम खोज पाया हूँ—नरहरि । यह नाम आपको संस्कृत साहित्य के किसी इतिहास में मिलेगा थोड़े ही । भला बताइए ! कवि बड़ा है और जैसा कि नागरिका-उद्दीपक आख्यान से प्रकट है, कवि में बड़ी क्रान्तिकारी भावना है ( यह कोई मामूली क्रान्ति है कि उसने आज से डेढ़ हजार साल पहले काव्यशास्त्रियों के सारे विधि-निषेध तोड़ताड़कर राजपुत्र के बदले एक धीवरपुत्र को अपना नायक बनाया ? ) लेकिन अजब बात है कि ऐसे युगप्रवर्तक कवि का कोई सम्यक् परिचय, कोई सम्यक् इतिहास हमारे पास नहीं है और आज जब कोई कुछ करना चाहता है तब दूसरे की कौन कहे, स्वयं कवि से उसे कोई सहायता नहीं मिलती । अपने बारे में ऐसा कैसा घनघोर मौन—

यही स्थिति आज से पाँच सौ एक हजार वर्ष बाद कवि रजनीश के संबंध में भी उत्पन्न न हो, यह सोचकर शोधक रजनीश अभी से उसकी उचित व्यवस्था में लग गये हैं ।

सबसे पहले उन्होंने जाकर एक बहुत खूबखूरत, चमड़े की जिल्द का रजिस्टर खरीदा और उस पर सुनहरे अक्षरों में एम्बॉस करवाया— रजनीश-रत्न-मंजूषा । तदुपरान्त रत्न-संग्रह का कार्य चलने लगा । स्वभावतः शोधक रजनीश का ध्यान सर्वप्रथम कवि रजनीश के वंशपरिचय पर गया, और उन्होंने अपनी बुढ़ी माँ और एक मृतप्राय चाचा की सहायता से तद्विषयक सब ज्ञातव्य बातें प्राप्त करके अपने रजिस्टर में लिखा—

कवि का नाम—रजनीश चतुर्वेदी 'रजनीश'  
 पिता का नाम—पंडित रामसमूच चतुर्वेदी  
 पितामह का नाम—पंडित रामगरीब चौबे  
 प्रपितामह का नाम—पंडित रामसुमेर चौबे  
 विशेष जिज्ञासुओं के लिए उन्होंने इसी के नीचे अपना विस्तृत वंशवृक्ष गना दिया था—



खानदानी पेशा—जजमानी । कवि रजनीश के उद्भव के पहले, सात जीढ़ियों में यहाँ से वहाँ तक कोई दूसरा कवि नहीं हुआ ।

जीवन पर आरंभिक प्रभाव—रामचरित्र मानस, राधेश्याम की रामायण, श्रीमद्भागवत्, माँ का तुलसी-चौरा, टीपू नामक कुत्ता जिससे कवि की विशेष मैत्री थी ।

अपने वंश और आरंभिक प्रभावों के संबंध में ये आवश्यक तथ्य देने के बाद कवि रजनीश ने अपने एक कम्पाउंडर और एक दर्जी मित्र की सहायता से अपने संबंध की कुछ स्थूल शारोरिक जानकारी दी थी जो उनके व्यक्तित्व और उनकी कला को समझने के लिए परमावश्यक थी—

लम्बाई—पाँच फुट सात इंच

वजन—एक सौ साठ पौंड

सीना—(बिना फुलाये) बत्तीस इंच

(फुलाकर) तीस इंच

कमर—चालीस इंच

भुजदण्ड—सत्रह इंच

बाँह—ग्यारह इंच

कलाई—सात इंच

मूल आर्यों का-सा गौर वर्ण । केश, ईषत् लम्बे । अच्छे भोजन से विशेष प्रेम है । मिठाइयों में इमिरती और फलों में कटहल बहुत पसन्द है ।

कवि रजनीश किसी दूसरे का साहित्य पढ़ना नहीं पसंद करते । इसलिए उन पर किसी के प्रभाव का प्रश्न असंगत है । कवि रजनीश के पास जो कुछ है, सर्वथा मौलिक है, उनका अपना है ।

इस प्रकार रजनीश-रत्न-मंजूषा में कवि का विस्तृत वंश-परिचय, कवि के आकार-प्रकार का विस्तृत व्योरा और शिष्टा-दीक्षा के संबंध में पूरी जानकारी थी । शोधकों को जितने प्रकार के प्रश्न तंग करते हैं—कवि का साहित्यिक जीवन कब प्रारंभ हुआ । कवि के सम-सामयिक कौन

थे और उनसे कवि के संबंध कैसे थे। खाने-पीने, वस्त्र-परिधान के संबंध में कवि की रुचि। हिन्दी साहित्य, भारतीय साहित्य, विश्व साहित्य में कवि रजनीश का स्थान : एक तटस्थ मूल्यांकन। बचपन से लेकर अब तक जीवन के सभी कालों के फोटो, जितने मिल सके—कुछ का रंग उड़ा हुआ, चिगुड़े-मिगुड़े, चूहों के कुतरे हुए और कुछ एकदम नये-नये, वही वर्मा के वहाँ वाली रुपये की तीन, अलग-अलग पोज, अलग-अलग भाव-भंगिमा—किसी में कवि आकाश को निहार रहा है, किसी में कवि उद्यान में विचरण कर रहा है, किसी में टुड्डी हथेली पर रखे चिन्ता-मग्न बैठा है, किसी में मित्रों के साथ आमोद-प्रमोद का रस ले रहा है, किसी में धोती-कुर्ता पहने हैं किसी में कोट-पतलून-नेकटाई है।

साथ ही शोधक रजनीश ने कवि रजनीश के निजी उपयोग की कुछ चीजें भी अलग एक मंजूषा में रख दी हैं, जैसे एक जोड़ी चप्पल, एक पुराना कलम और दावात और ऐसी ही दो एक छोटी मोटी चीजें जिनकी उस वक्त बड़ी दुँढ़ैया मचेगी लेकिन तब एक हाथ न आयेगी।

कहने का मतलब यह कि आनेवाली पीढ़ियों की सुविधा का विचार करके कवि रजनीश ने अपने विषय की सब सामग्री यत्नपूर्वक रजनीश-रत्न-मंजूषा में एकत्र कर दी है और उनके काव्य पर शोधकार्य करते समय किसी को वह सब कष्ट नहीं उठाने पड़ेंगे जो स्वयं उनको नरहरि कवि के लिए उठाने पड़े !

अब बस उनके मरने और अमर हो जाने की देर है।

आज ही अमोलक चंद ने एक मशीन खरीदी है । सवाल अब उसको बिठाने का है । पहले तो दोस्तों की कुछ ऐसी राय थी कि दरियाबाद या कठघर में एक छोटा-सा मकान लेकर मशीन बिठानी चाहिए मगर फिर जब दुबारा सवाल के हर पहलू पर गौर किया गया तो यही बात तय पायी कि शहर के बाहर जाना ठीक न होगा । लिहाजा अमोलकचंद की सिविल लाइनवाली दूकान में ही उसके लिए जगह पैदा की गयी । उतनी छोटी-सी मशीन के लिए जगह पैदा करना वैसा कुछ मुश्किल भी न था । दूकान में आल्मारियों के पीछे यों ही काफी जगह थी और जब आल्मारियाँ थोड़ी और आगे खिसका दी गयीं तो तमाम जगह ही जगह निकल आयी । गणेश का सुभाव बहुत अच्छा था, जो काम दुनिया की निगाह बचाकर करना चाहते हो उसे सरोहन् दुनिया की नजरों के सामने करो—बस जरा सी आड़ कर लो । और वह आड़ यहाँ पहले से मौजूद थी । एक असें से इस चीज की जरूरत महसूस की जा

रही थी मगर कोई हिम्मत का धनी आदमी दस हजार रुपया लगानेवाला न मिलता था। वह तो अमोलक चंद भी काबू में आते मगर जब उनको यह समझाया गया कि इसमें आसमान से चाँदी बरसेगी, आप देखते तो जाइए, बटोरकर रखना मुश्किल हो जायगा, तो अमोलक चंद के मुँह में पानी आ गया। काम बहुत अच्छा नहीं था इसलिए उस रास्ते पर कदम बढ़ाने में डर मालूम होता था, सिर्फ पुलिस का ही डर नहीं उस सबसे बड़े पुलिस का भी जिसका दफ्तर आसमान में है। धर्मभोर आदमी की सदा यही दुर्गत होती है। उस रात अमोलक चंद की आँख एक मिनट के लिए नहीं लगी। वह सबेरे उठे तो आँखें लाल थीं और चेहरे पर हवाईयाँ उड़ रही थीं। बीबी ने पूछा—रात नींद नहीं आयी ?

अमोलक चंद ने कहा—नहीं, ऐसी तो कोई बात नहीं, सोया तो ठीक ही मगर लगता है आँख में जैसे कुछ पड़ गया है, जल-सी रही है।

अमोलक चंद के दिल में एक खयाल यह भी आया कि सब बात साफ-साफ निर्मला से कह दें लेकिन कह नहीं सके। यह ठीक है कि वह अपनी स्त्री को बहुत प्यार करते हैं लेकिन ऐसे अहम मसले पर वह ठीक राय दे सकेगी, इसका उन्हें विश्वास न था। उसकी राय शायद अनुकूल भी न हो इस बात का भी डर था। औरतें ज्यादा दूर तक नहीं सोच पातीं, उन्हें बस सामने की चीज दिखायी पड़ती है। तो फिर पूछने से लाभ। सो उन्होंने उस चीज के बारे में कुछ नहीं कहा, मगर सीने पर बोझ बना रहा। इस किस्म का यह पहला काम था जो वह करने जा रहे थे और उनका परिवार सुखी था। पत्नी सुन्दर थी, सेवापरायण थी; बच्चे, तीनों बच्चे, स्वस्थ थे, होनहार थे, क्लास में पहले नम्बर आते थे। उनका खयाल किसी तरह दूर न होता था।

लेकिन सारा दुःख अनिश्चय में है। कहा भी तो है, संशयात्मा विनश्यति। लेकिन ऐसी बात क्यों आ रही है मेरे मन में ? मैं कौन हूँ ? मारने-जिलाने वाला तो भगवान् है। जिसको आयु अभी शेष है वह पानी पीकर भी उठ बैठेगा और जिसका परवाना भगवान् के यहाँ से कट चुका

(मिनिस्टर साहब के हुकुम या चुंगी के चालान की तरह !) उसको संजीवनी रस पिलाने से भी कोई लाभ नहीं ! व्यर्थ संशय में मत पड़ो अमोलकचंद ! लिहाजा दूकान पर फिर जब दोस्त सब इकट्ठा हुए तो अमोलक चंद के मन में कोई अनिश्चय न था और मशीन का आर्डर दे दिया गया । महीने भर में मशीन आ भी गयी और जहाँ उसे बैठना था, बैठ भी गयी और काम शुरू हो गया । काम जब शुरू हुआ तब पता चला कि उस चीज की कितनी जरूरत थी । घरती जुती पड़ी थी, बस बीज डालो और फसल काट लो ।

एक जमाने से यह चीज देखने में आ रही थी कि जब से हमारी पंच-वर्षीय योजनाएँ सफल होने लगी हैं तब से बीमारियों का दौरा बढ़ गया है और जब से बीमारियों का दौरा बढ़ा है तब से अंग्रेजी दवाइयों की बड़ी-बड़ी कम्पनियाँ विलायत से उठकर हमारे यहाँ पहुँचती जा रही हैं । सोचने-विचारने वाले लोगों के लिए यह चीज काफी परेशानी का कारण थी—एक तो सब दवाएँ हर वक्त मिलती न थीं दूसरे उनकी कीमतें आसमान से बात करने लगी थीं । अमोलक चंद की मशीन इसी कठिन सवाल का जवाब थी ।

और इसमें शक नहीं कि नन्हों सी यह मशीन सचमुच बड़ी गुनी थी । शहर के सारे कबाड़ी पुरानी दवाओं की शीशियाँ और बोतलें आकर दूकान पर बेच जाते थे । उसके बाद फिर दवा तैयार करने की विधि बहुत सरल थी, बस नल में से साफ पानी लिया और शीशी और पानी मशीन के हवाले किया और अभी चंद मिनट पहले जो सिर्फ पानी था वह दवा की शकल में हाजिर है । आपको बस लेबुल चिपकाना है । सो लेबुल भी बम्बई के एक आला प्रेस में छपकर आ जाते थे । फिर क्या है चीज तैयार है, जिसे चाहे दिखा लो, कोई पकड़ नहीं सकता । यही तो सफाई थी उस मशीन की वर्ना दस हजार रुपए किस बात के दिये थे ।

धीरे-धीरे अमोलकचंद को इस धंधे में इतनी बरकत हुई कि एक मशीन नाकाफी हो गयी और तब अमोलक चंद ने उसी मशीन की कमाई से दो और मशीनें मंगायीं । फिर दो और मंगायीं । और होते-होते इन दवाओं का

एक बड़ा कारखाना हो गया और उनके काम का विस्तार इतना हुआ कि इस छोटे से इलाहाबाद शहर में बैठकर वह दूर-दूर कलकत्ता और बम्बई और मद्रास तक माल सप्लाई करने लगे ।

उधर काम में बरकत हुई, इधर नयी-नयी इमारतें खड़ी होने लगीं, बच्चे पबलिक स्कूलों में पढ़ने लगे, घर की रंगत एक सिरे से बदल गयी । उनका शुमार शहर के बड़े रईसों में होने लगा, हर बड़े डिनर और ऐट होम के न्योते उनके यहाँ आने लगे और खुद उनके घर में बंरे और खानसामे दौड़ने लगे । किस्मत का यह नया रंग देखकर निर्मला भी प्रसन्न थी । वह किसी से कहती न थी मगर उसका दृढ़ विश्वास था कि यह उसकी अचल राम-भक्ति का ही प्रसाद है । उसके दिल में ऐसा विचार आना अस्वाभाविक भी न था क्योंकि इधर कुछ बरसों में उसके पति की भी धार्मिक रुचि बढ़ गयी थी, गंगा स्नान का क्रम अधिक नियमित हो गया था, साधुओं को भोज अक्सर खिलाया जाने लगा था, गरीबों को कंबल बाँटे जाने लगे थे । इतने सब पुण्य कर्म जब एक साथ जुटे हों तब भगवान् कैसे प्रसन्न न हों और भगवान् जब प्रसन्न हैं तब कपड़े का व्यापार तो और बात है, मिट्टी को छुओ तो सोना हो जायगी । स्त्रियों के समाज में निर्मला का विशेष आदर होने लगा और वह बड़ी प्रसन्न थी । पहनने-ओढ़ने के तो अब उसके दिन रहे नहीं, यह साध वह अपनी बेटी चित्रा के माध्यम से पूरी कर लेती है, जो कि अब चौदह साल की सुन्दर किशोरी है और अंग्रेजी स्कूल में पढ़ने जाती है । लड़कों में से बड़ा प्रेम किशोर अच्छी नौकरी पाकर कलकत्ते चला गया है और छोटा किशन ग्वालियर के सिधिया पबलिक स्कूल में पढ़ रहा है, जहाँ सब बड़े आदमियों के लड़के पढ़ते हैं ।

गरज कि पैसा, शोहरत, इज्जत, ऐसी कोई चीज न थी जो दस बरस के छोटे से अर्से में अमोलक चंद ने नहीं कमा ली और अब घर में बड़े लड़के की शादी की तैयारियाँ हो रही थीं । कलकत्ते के एक बड़े व्यापारी के यहाँ संबंध पक्का हुआ था और माँ बाप की खुशी का ठिकाना न था । इस संबंध से समाज में उनकी नाक तो ऊँची होगी ही, लड़की भी बहुत अच्छी है,

बिल्कुल मक्खन का गोला समझो, ऐसी नर्म, गुदाज, छरहरा बदन, जमीन तक लहराते हुए लम्बे-लम्बे बाल, बड़ी किस्मत से ऐसी बहू घर में आती है। और यह भी नहीं कि अनपढ़ हो, सोनियर केम्ब्रिज पास है, फर-फर अंग्रेजी बोलती है, देखनेवालों को आँखें फटी की फटी रह जायेंगी। अमोलक चंद ने निर्मला से ठीक ही तो कहा था—बतलाओ, पुराने दिन होते तो सपने में भी हमें ऐसी बहू नसीब होती? और निर्मला ने आँख मूंदकर विनय-पूर्वक भगवान् का स्मरण करते हुए कहा था—सब उसकी मर्जी है....

अमोलक चंद ने थैली का मुँह खोल दिया था और इस वक्त उनका मकान नयी दुल्हन की तरह सजा खड़ा था। देखें शहरवाले कि उमंग से शादी करना किसको कहते हैं। तीन दिन पहले से ही सजावट का सब काम पूरा हो गया था और रात को जब भीतर-बाहर को सब रोशनियाँ बल उठतीं तो ऐसा मालूम होता कि जैसे परियों का राजमहल हो जहाँ घुँघुआओं की छूमछनन अब होने ही वाली है। और हो ही रही थी। घर नाते-रिश्ते की तमाम लड़कियों से भरा हुआ था, बच्चियाँ, किशोरियाँ, युवतियाँ, लड़कोर बहूएँ, प्रौढ़ाएँ, सभी थीं। सबको अपनी अपनी टोलियाँ बन गयी थीं और सब अपनी टोलियों में बैठी हुई इसके-उसके किस्से सुनाती रहतीं और एक दूसरे को छेड़ती रहतीं और इसी सब में दिन बीत जाता। कोई लड़की के ब्याह में तो आयी नहीं थी कि चाहे दिखाने के लिए ही सही, काम में भी कुछ हाथ बटातीं। लड़के के ब्याह का न्योता तो पूरम्पूर मस्ती का न्योता होता है। लिहाजा मस्ती का बाजार पूरी तरह गर्म था। बच्चियाँ अपने घरों में मग्न थीं और किशोरियाँ और नवयुवतियाँ उन्हीं घरों में हर खिड़की-दरवाजे से चोरी-चोरी अपने राजकुमारों को ले आतीं और फिर कानों में बातें होतीं, आँखों से इशारे होते, हँसी की फुलझड़ियाँ छूटतीं और इसी नटखटपन में गर्मी का लम्बा, खस से मुअत्तर दिन बातों-बातों में खत्म हो जाता। काम करने के लिए निर्मला थी लेकिन उसे किसी से कोई शिकायत नहीं थी क्योंकि घर में पहली बार बहू लाने का सीमातीत आनन्द उसके अंग-अंग में फड़क रहा था—और बहू भी कैसी? चाँद का टुकड़ा,

रूप में, गुन में, सहर में लाख में एक । खुशी मनाने ही तो आयी हैं सब, मनाने दो, काम हो कितना है ! और उतने सब काम के बीच में वह कभी इससे चुहल की एक बात कर लेती कभी उससे और फिरकनी की तरह घर भर में नाचती रहती ।

सब लोग इकट्ठा हो गये थे, अब बस किशन की कमी थी, फिर घर पूरा समझो । और वह भी अब आया ही चाहता है । इम्तहान चल रहे हैं न ।

आज किसी गाड़ी से किशन को आना चाहिए । सबेरे से नौ बार रेलवे एन्क्वायरी को फोन किया जा चुका है—एक के पूछने से दूसरे का काम नहीं चलता ।

तभी दरवाजे पर आवाज सुनाया पड़ी—तार ।

अमोलक चंद अपनी तरफ से डग बढ़ाते हुए आये, उधर निर्मला हाथ का काम छोड़कर दौड़ी और इधर चित्रा ने तेजी से आगे बढ़कर नोकर के हाथ से तार लेते हुए कहा—भैया का तार है....

अमोलक चंद ने किसी बेसब्री का इजहार न करते हुए कहा—देखो तो किस गाड़ी से आने को लिखा है....

चित्रा ने जल्दी-जल्दी तार खोला—और चीख पड़ी....

यकायक सब तरफ मौत का सन्नाटा छा गया, वक्त थम गया....

तार में लिखा था—आपका लड़का घोड़े से गिर पड़ा । सख्त चोट आयी है । फौरन आइए ।

तार स्कूल के डाइरेक्टर की तरफ से था ।

अब काटो तो किसी के बदन में खून नहीं । एक को दूसरे से आँख मिलाने में डर मालूम हो रहा था ।

चंद मिनटों में खुशी की फुलझड़ियाँ जो चारों तरफ छूट रही थीं, राख हो गयीं और खिलखिलाहटों का दम घुट गया । जहाँ अभी शादियाने बज रहे थे वहाँ अब सिसकियाँ दबायी जा रही थीं । शादी की तैयारियाँ

एक तरफ, निर्मला और अमोलक चंद पहली गाड़ी से ग्वालियर के लिए रवाना हुए ।

किशन बिल्कुल बेहोश पड़ा था, उसके पैर में गैंग्रोन हो गया था जो बिजली की तेजी से बढ़ता जा रहा था और अब उसकी जान बचाने की कोई सूरत थी तो यही कि फौरन उसका पैर काट दिया जाय । उसी के लिए बाप को तार देकर बुलाया गया था । वैसे चोट तीन दिन पहले लगी थी और बुरी चोट थी लेकिन जान का कोई खतरा न था । सिविल सर्जन ने दिन भर में पचास लाख यूनिट पेनिसिलीन घायल के शरीर में डाल दी और काफी निश्चिन्त होकर बैठा रहा कि अब डरने की कोई बात नहीं है, घाव सड़ने नहीं पायेगा । लेकिन अगले दिन सुबह जो उसने मरीज की हालत देखी तो माथा ठोक लिया—वह हैरान था कि यह मामला क्या है ।

---

यह कैफे विस्तारिया है....

....कितनी खूबसूरत जगह है यह विस्तारिया, एकदम नाम के अनुरूप। विस्तारिया की ये इटालियन लताएँ कितनी सुहानी हैं, इनके ये नन्हे-नन्हे ऊदे-ऊदे फूल कैसे कनखियाँ मारते हैं....अजी छोड़िए भी....मधुमालती लिये फिरते हैं....मधुमालती हिन्दोस्तानी लता है, इसमें वह बात कहाँ जो विस्तारिया में है। विस्तारिया में इटली की आत्मा है, दान्ते और विंचो और माइकल एंजेलो का अपना सौन्दर्यलोक है।

इस वक्त शाम के छः बजे हैं। लोगों का आना-जाना शुरू हो गया है। लेकिन उनको आने में अभी ठीक तीस मिनट हैं।

किन को ?

उधर साढ़े छः का घंटा बजेगा और वह उस पूरब तरफ वाले दरवाजे से भीतर दाखिल होंगे।

कोन ?

यहाँ पर उनकी एक खास सीट है, वह उस कोने में। वह सदा उसी सीट पर बैठते हैं। वही उनका व्यासपीठ है। उसी पर बैठकर

उनको सारी प्रतिभा को बातें सूझती हैं, एक दो नहीं ढेरों, खँचियों । एक के बाद एक, ताबड़तोड़....

मगर यह हैं कौन भाई ?....

ओपफोह, कितने बेसब्रे हो, घीरज तो रक्खो, आते ही होंगे अब वह, खुद ही देख लेना ।....अब बस एक मिनट की देर है....और लो वह भी बीता....बीता....बीता....साढ़े छः ब——जा....

... और वह देखिए अशान्त जी ने भीतर पैर रक्खा....

ये उलभे-पुलभे बाल, ये आँखों के भारी पपोटे, ये पीले-पीले दाँत, ये स्याह होंठ, ये निकोटीन के धुएँ से सुर्ख-स्याह उँगलियाँ, यह छः दिन की दाढ़ी चेहरे पर, यह घबराया हुआ सा, उड़ा-उड़ा चेहरा, यह चाकदामन कुर्ता, ये शोरबे के दाग गन्दे पाजामे पर, यह बाप-दादों से विरासत में मिली हुई शेरवानी, पैर में ये टूटी हुई पेशावरी चप्पलें और यह उदासी की फिजा हर तरफ....

आप ही अशान्त जी हैं । आप हमारे नगर के एक बड़े कवि हैं । अशान्त उनका खुद का दिया हुआ नाम है । बाप का दिया हुआ नाम बजरंगबली था । यह नाम अच्छा नहीं था । बजरंगबली नाम का आदमी पहलवान हो सकता है, पण्डा हो सकता है, कवि नहीं हो सकता, कभी नहीं....अतः बजरंगबली का दाह-संस्कार कर दिया गया और अशान्तजी का आविर्भाव हुआ ।

और जिस दिन से यह नामकरण हुआ उसी दिन से उनके सारे रंग-ढंग बदल गये ।

बजरंगबली सबसे हँसता था, बोलता था, साफ-सुथरे कपड़े पहनता था, लोगों पर फिकरे कसता था, लोग उसपर फिकरे कसते थे, वक्त पर सोता था, वक्त पर जागता था—गरज कि वह एक औसत आदमी था, हिन्दु-स्तान के करोड़ों आदमियों में से एक । मगर जब से उसका नाम अशान्त हो गया है, यही समझो कि साहित्य के आकाश में एक नया चाँद-सूरज उग आया है । पहले उसपर भी दुनिया के अदब-कायदों की हुक्मरानी थी

मगर अब बाजी पलट गयी है। अदब-कायदे सब फटोचर लोगों के लिए होते हैं, शायर के लिए कोई अदब-कायदा नहीं होता, किसी किस्म की पाबन्दी शायर के लिए जहर होती है। शायर इस दुनियावी सतह से ऊपर रहता है और उसको समाज के मामूली कायदों से बाँधना ठीक नहीं। घर में क्या है क्या नहीं है, कौन आराम से है कौन तकलीफ से है—इस सबको देखने का अवकाश कवि को कहाँ है? उसका सर आसमान को छूता है और वह भगवान से रू-ब-रू बात करता है। जो दुनिया को नये सिरे से सँवारने निकला है, जिसने सारी दुनिया को अपना घर समझ लिया है, वह कैसे घर की चहारदीवारी में अपने आपको कैद कर ले?

यही सोचकर अशान्तजी अपने घर से बहुत बचते हैं और यहाँ-वहाँ दोस्तों के यहाँ चक्कर काटते हुए शाम के ठीक साढ़े छः बजे विस्तारिया पहुँच जाते हैं। इसमें कभी कोई व्यतिक्रम नहीं होता।

कैफे में बैठकर वह दो घण्टे तक चाय का एक प्याला चलाते हैं (यह बड़ी कठिन सिद्धि है), चार मीनार की दस सिगरेटें फूँकते हैं और अपने कवि मित्रों के साथ अपने खोजे हुए भूले-बिसरे विदेशी कवियों की और राजनीतिज्ञ मित्रों के साथ वर्ल्ड गवर्नमेन्ट के सिद्धान्त की चर्चा करते हैं—और फिर घर पहुँच कर सो जाते हैं।

....मगर रास्ते में हर रोज उन्हें एक भूत का सामना करना पड़ता है। वह भूत है उनकी बीवी जिसका बड़बड़ाना उन्हें दूर से ही सुनाई पड़ने लगता है और उनके पैरों की गति आप से आप मन्द पड़ जाती है—

दूसरे के सर लुकमा तोड़ते हो, शर्म भी नहीं आती। मगर तुमको क्या, तुम तो बाहर ही बाहर रहे आते हो, बीतती तो मुझपर है, सास-ननद के ताने तो मैं सुनती हूँ। कलेजा छलनी हो गया। किसी से आँख मिलाकर बात करते मुझे शर्म आती है। कैसे समझाऊँ तुमको। तुम खुद नहीं देखते क्या, तुम्हारी बीवी सबकी टहलुई बनकर रह गई है। तुम्हारी आँखों के सामने ही तो सब होता है—मगर तुम घरमें रहते ही कब हो। ....भाभी जो जरा एक गिलास पानी दे जाइए....भाभी जो जरा वह हाथ धोने का

साबुन दे जाइये....भाभी जी, आज कालेज की दो सहेलियाँ आ रही हैं मेरी। चाय का पानी जरा ज्यादा रखिएगा। और हाँ, कल आपकी चाय में धुआँ लग गया था....मैं खूब जानती हूँ। औरत से औरत के दिल का भेद नहीं छिप सकता। मैं जानती हूँ क्यों मेरी ऐसी दुर्गत है। इधर से उधर से सब मुझी पर हुक्म चलाते हैं। इसलिए न कि जानते हैं हमारे आसरे पड़ी है, इसका पति कुछ कमाता-धमाता नहीं....पीठ पीछे ननदें मेरी जैसी ठिठोली करती हैं....बदन में आग लग जाती है।....सासु जी तो सीधे लट्ठ मारती हैं—बहू, तू अपने मर्द को समझाती नहीं कि कुछ करे, चार पैसे कमाये? ऐसे कब तक चलेगा? तुम्हीं कहो मैं क्या जवाब देती। जी में आया कह दूँ, आप ही क्यों नहीं समझाती? जो मेरा मर्द है वह आपका बेटा भी तो है। मेरी तो जबान छिल गयी कहते कहते....मगर चुप रह जाती हूँ। सौ रोग की एक दवा, चुप्पी। लेकिन कब तक? मैं भी तो आदमी हूँ, कब तक लोगों की बातें सहूँ? पहर रात से जाग कर सारा दिन काम करती हूँ, ग्यारह बजे रात सोने जाती हूँ। लेकिन तब भी किसी का मुँह सीधा नहीं होता। आज दाल में नमक तेज है तो कल हल्दी ज्यादा हो गयी थी, परसों तरकारों से घी चूर रहा था। आज यह तो कल वह। कुछ न कुछ लगा ही रहता है। मैं तो आरी आ गई ऐसी जिन्दगी से और तुम हो कि अपनी निगोड़ा कविता से ही तुम्हें फुर्सत नहीं। मैं पूछती हूँ ऐसी कविताई से क्या फायदा? बैठे तुकें जोड़ते रहते हो....बेफजूल....कुछ इस जिन्दगी की तुक भी तो ठीक करो....कहीं अपना घर नहीं, कोई इज्जत नहीं, तुमको तो कुछ व्यापता ही नहीं जैसे....मान-अपमान सब अपनी चाय के संग घोलकर पी गये।

....अभी पिछले महीने लाला आये थे, तुम्हारे छोटे भाई हैं, तुम उनके बड़े भाई हो, लेकिन देखा था कैसे लोग उनको पलकों पर लिये फिरते थे, क्या शान थी उनकी बीबी की, कितना दुलार होता था उनके बच्चों का, बात मुँह से निकली नहीं कि पूरी हुई....और एक हमारे बच्चे हैं कि कोई उनसे प्यार से बोलता तक नहीं....जिधर जाते हैं, झिड़की....एक-एक

चीज के लिए बेचारे तरसकर रह जाते हैं.... इसीलिए न कि उनका बाप कमाऊ नहीं है, वर्ना शकल में सूरत में अक्ल में दिमाग में किससे कम है हमारे बच्चे। तुम्हारे पाप का दण्ड भोगना पड़ता है बेचारे बच्चों को मगर तुम हो कि कान पर जूँ भी नहीं रेंगती ! इतनी देर मैंने बक-बक की और तुमने कान दबा कर सब कुछ सुन लिया। मगर इसके बाद ? मैं जानती नहीं क्या, वही कुत्ते की दुम, टेढ़ी की टेढ़ी। तुम्हें क्या, तुम्हें तो बस अपना दोनों वक्त का खाना और दोनों वक्त की चाय मिलती जाय फिर तुम्हें किस बात का गम है, तुमसे कोई थोड़े ही कुछ कहने जाता है, भेलना तो मुझको पड़ता है, चाँदमारी तो मुझपर होती है....

—ओफ ओफ, मालती, सुन लिया, सुन लिया, और कितना सुनाओगी। मगर मैं कहूँ क्या, कुछ यह भी तो बताओ.... डाका डालूँ नकब लगाऊँ गिरह काटूँ, क्या कहूँ। और तो सब कुछ करके हार गया —

—तो फिर छोड़ो यह कविताई का चक्कर, बेमतलब का रोग....

—और फिर ?

—मेहनत करो।

—मेहनत ? डेढ़-बैठक ?

—डेढ़-बैठक नहीं, बोझा ढोओ चलकर, गिट्टी फोड़ो। मैं भी तुम्हारा साथ दूँगी। यह सब काम शहर में बहुत मिल जायेंगे। यह घर हम लोग छोड़ देंगे। अपनी मेहनत को रोटी खायेंगे।

अपनी पत्नी की ये उत्साहवर्द्धक बातें सुनकर कवि में नये साहस का संचार हुआ और उसने मालती को संबोधित करते हुए गद्गद कंठ से कहा — तुम जब मेरे साथ हो प्रिये, तब फिर मुझे संसार में किसका भय है। मैं बोझा ढोऊँगा, मैं गिट्टी फोड़ूँगा, मैं रिकशा चलाऊँगा, तुम कहोगी तो अपने गीत गा-गाकर चना जोर गरम बेचूँगा, जो कहोगी वह कहूँगा, और तुम देखना, मैं तुम्हें दिग्विजय करके दिखलाऊँगा। आओ, हम लोग आज ही इस घर को त्याग दें। मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि चाहे मेरी हड्डी गल-

गल कर गिर जाय, मैं अब कभी इस घर में लौट कर न आऊँगा । अब हम बस अपनी मेहनत की रोटी खायेंगे ।

ऐसा कहकर वह स्वाभिमानी कवि उसी समय अपने शरीर पर से सब पुराने कपड़े नोच-नोचकर फेंकने लगा, कि जैसे साँप केंचुल छोड़े....

उसी समय मेघगर्जन के स्वर में अशान्त जी को सुनाई पड़ा—वत्स, मैं तुझसे प्रसन्न हुआ, माँग जो माँगना हो....

अशान्त जी ने खरहे की तरह कान उठाकर अपने आसपास देखा और बहुत धीरे से कहा—

हे घट-घटवासी, आपकी मुझपर कृपा हुई, मेरा परम सौभाग्य है । आपके इस पुत्र की केवल दो कामनाएँ हैं । एक तो आप कैफे के मैनेजर को मेरे साथ दुर्व्यवहार करने के लिए यह दण्ड दें कि उसकी सुन्दरी पत्नी किसी खानसामे के साथ भाग जाये और दूसरे आप कुबेर को आदेश दे दें कि वह मेरा कैफे का बिल महोने के महीने सीधे वहीं से चुका दिया करें । सब भ्रंशट से मुक्ति मिले ।

और तभी फिल्मी आकाश से विस्टारिया के फूल बरसने लगे ।



भारी-भरकम, ऊँचे-पूरे, हैकल देव-जैसे ब्रह्मदेव बाबू के शरीर में उनका कण्ठ भी मेघ-मन्द्र था और जब वह तैश में आकर गरजने लगते तब यही ताज्जुब होता कि आसमान हर बार काँप-काँपकर क्यों रह जाता है....

और आज दो रोज से बेचारे ने बिस्तर पकड़ लिया है। इस बार जो उनको दिल का दौरा पड़ा है तो उनका दाहिन। अंग बेकाम हो गया है। उठने-बैठने से भी मजबूर, जिस करवट लिटा दिए जाते हैं, चुपचाप लेटे रहते हैं। बोल तक नहीं पाते।

वह आदमी जिसके अंग-अंग में पारा भरा रहता था, जिसके लिए थिर होकर दो छन बैठना एक जान का अज़ाब था वही अब इस वक्त यों साकित पड़ा है कि जैसे कोई लाश हो। जिन आँखों से कभी बिजलियां टूटती थीं, उनमें अब एक सन्नाटा था कि जैसे शाम का उदास घुँघलका किसी वीराने पर उतर आये। वह जबान जो कभी आग उगलती थी इस वक्त बुके हुए चूल्हे की तरह ठण्डी थी। कहीं जुम्बिश नहीं, हरकत

नहीं—दो रोज में ही यह क्या हो गया ।

उनकी अर्निद्य रूपवती स्त्री संघ्या उनसे तीस बरस छोटी थी और अभी पिछले साल उसको बच्चा हुआ था—खूब तगड़ा और खूब ही गोरा-चिट्ठा, कि जैसे मक्खन का गोला । कौन उनको बुढ़ा कहेगा ? खाने पर आते तो दो-ढाई सेर कलिया अकेले उड़ा जाते ।

ब्रह्मदेव बाबू को खाने का जैसा शौक था वैसा कपड़ों का न था । पुरानी वज्रा के आदमी थे, वैसे ही ढीले-ढाले कपड़े पहनते । हाँ इतर-फुलेल का शौक उन्हें था और खूब था । मुश्क और हिना और खस और भगवान् जाने कौन-कौन से इतर हमेशा उनके इतरदान में लगे रहते ।

शहर में दो-तीन मकान किराए पर उठे हुए थे जिनकी वसूली का काम अब रिटायर होने के बाद ब्रह्मदेव बाबू ने खुद अपने जिम्मे ले लिया था । वह बहुत कायदे के आदमी थे । हर किराएदार की उन्होंने तारीख बाँध दी थी और चाहे कुछ हो जाय वह जरूर उस रोज उसके यहाँ जा धमकते और अपना ऐसा रुद्र रूप दिखलाते कि नए किराएदारों की सिट्टी-पिट्टी गुम हो जाती । मगर जितने पुराने किराएदार थे (और नए किराएदार भी धीरे-धीरे पुराने होते जाते हैं) वह अब इस गरजने-बमकने की असलियत समझने लगे थे । उनको ब्रह्मदेव बाबू की कमजोर नस का पता चल गया था । उधर ब्रह्मदेव बाबू चीखते रहते इधर कोई शतरंज की बिसात बिछा देता, कोई अपना बच्चा लाकर दादा जी की गोद में डाल देता, किसी किराएदार की बहन आकर अपना दुखड़ा रोजे लगती—और किराये की बात जहाँ की तहाँ रह जाती, जिसका नतीजा था कि इस वक्त एक-एक किराएदार चार-चार छः छः महीने के किराए का देनदार था ।

पहलौ स्त्री से ब्रह्मदेव बाबू के दो जवान बेटे थे जो अपनी नई माँ के

साथ मिलकर बड़ी लगन से पिता की सेवा कर रहे थे मगर चौबीस घण्टे की ऐसी कड़ी ड्यूटी के मारे उनका भी हाल खराब था। थकान और नींद से अंग-अंग टूट रहा था, जोड़-जोड़ दुख रहा था। ऐसे में अगर कुछ अपने लोग मदद के लिए आ जाते। मगर कौन आता, किसे फुर्सत है। जिसपर पड़ती है, वही जैसे-तैसे भेल लेता है।

ब्रह्मदेव बाबू चार दिन मौत से लड़े। पाँचवें दिन, सबरे छः बजे, जबकि अभी पौ भी नहीं फटी थी, उनका दम निकल गया।

सात बजते-बजते सगे-सम्बन्धियों को खबर पहुँच गई लेकिन इस माघ-पूस के जाड़े में, जब कि बर्फानी हवा सनन्सनन् चल रही हो किसकी हिम्मत थी कि चट निकल पड़ता। लिहाजा सबने खबर लानेवाले से कहा, चलो आते हैं और मन ही मन तय किया कि अच्छी तरह धूप निकलने पर चलेंगे। अब क्या रक्खा है जहाँ जिसे जाना था चला गया कौन किसके दुःख को बँटा सकता है सब लोकाचार है।

....और फिर सब घरों में मिसकौट होने लगी।

- बुढ़्ठा बड़ी दौलत छोड़कर मरा होगा....
- उसमें भी कोई शक है। जनम भर की कमाई थी....
- पता नहीं वसीयत लिखवा गए हैं कि नहीं....
- देखना है भाइयों में अब कैसी बनती है....
- मालती का क्या होगा अब ? उसका भी कुछ बन्दोबस्त किया है या नहीं, कौन जाने....
- एक कौड़ी तो देंगे नहीं कुलदीप-हरदीप....

—थे तो साठे पर पाठे यकायक यह दिल का दौरा कैसे पड़ गया ?

—तुम कुछ समझती भी हो । आदमी सबकी नजर बचा सकता है, भगवान् की नजर नहीं बचा सकता....

—क्यों ? कोई खास बात है क्या ?

—खास बात पूछती हो ! भाई का हिस्सा हड़पने वाले को भगवान् दण्ड नहीं देगा ?

—भाई का हिस्सा हड़पने....

—रामचन्दर बाबू को कुछ मिला थोड़े ही । बड़ा घाघ था बुढ़ा । साफ अँगूठा दिखा गया ।

—और तो जो है सब ठीक ही है । एक न एक दिन सभी को जाना है । लेकिन इतना जरूर है कि बुढ़ापे में व्याह करके ब्रह्मदेव बाबू ने ठीक नहीं किया । जवान स्त्री है, छोटे-छोटे बच्चे हैं, बेड़ा कैसे पार लगेगा ?

—तुम तो ऐसी बात करते हो जैसे तुमको कुछ पता ही न हो । उसके तो पेट में दाँत हैं, मालती के ! बस देखने भर की भोली है । कुल-दीप से उसकी पुरानी आशनाई है । खूब घुटती थी दोनों में । बिरजू की भ्रम्माँ कहती थी । बुढ़ऊ को भी पता था इस चीज का । तभी तो दिल के दोरे पड़ने लगे.... अब किसका डर पड़ा है इन्हें, खूब गुलछरें उड़ेंगे । जो मियाँ-बीबी राजी तो क्या करेगा काजी....

घरेलू मिसकौटों से छुट्टी पाकर जब अपने सब सगे-सम्बन्धी अस्पताल पहुँचे तब नौ बजे थे, धूप अच्छी तरह फैल चुकी थी, और वहाँ अच्छी-खासी भीड़ जमा थी, जिसमें वकील, डाक्टर, व्यापारी, नौकरी-पेशा, सभी तरह के लोग थे और अच्छे मोतबर लोग थे । उनको देखकर इन सगे-सम्बन्धियों को बहुत हैरानी हुई—इस खूसट बुढ़े का मातम करने के लिए इतने लोग ! आखिर ऐसी क्या चीज मिल गई इन्हें उसमें । बोली कंसी थी, जैसे ततैया का डंक—तिस पर भी इतने सारे लोग !

ये सभी लोग कतई खामोश थे, कोई कुछ न बोलता था, मगर चहरों पर सबके गम लिखा हुआ था। यों ही एक-दो टुकड़ा भूले-भटके, निहायत धोमी आवाज में किसी के मुँह से निकल जाता था और फिर खामोशी छा जाती थी। भीतर भी रोने-पीटने का तूफान फिलहाल थमा हुआ था। मालती एक बार बेहोश होकर होश में आ चुकी थी। यों तो रो वह अब भी रही थी मगर वह कुछ दूसरी तरह का रोना था जिसमें आँसुओं की नदी बाहर की तरफ न बहकर भीतर की तरफ बहती है, जिसमें आँखों से ज्यादा दिल गोला रहता है।

दानों बेटे भी मूर्तियों की तरह निश्चल, निश्शब्द, लुटे-से बैठे थे। उनकी आँखें सुख थी और पता नहीं दूर, बहुत दूर, किस चीज पर एकटक गड़ी हुई थीं। अस्पताल वाले कई बार लाश ले जाने के लिए कह चुके थे और अब इन्हीं सगे-संबंधियों की प्रतीक्षा थी कि लोग आया तो अर्थी उठे।

तभी ये सगे-सम्बन्धी पहुँचे। उनको यह खामोशी अच्छी न लगी। शायद कुछ मायूसी भी हुई। इनका गम खोटा है, वर्ना इतनी जल्दी ये चुप कैसे हो जाते। और फिर हम क्यों आये हैं यहाँ? इनके दुख को बँटाने ही तो? वर्ना फिर हमारी क्या जरूरत थी अगर इन लोगों को इसी तरह बैठकर बिसूरना था....

और उन्होंने वहाँ पहुँचते ही, चार क्षणों में परिस्थितिका अध्ययन करके धाड़ें मार कर रोना शुरू कर दिया। स्त्रियाँ स्त्रियों का और पुरुष पुरुषों को भेंट भेंटकर, छाती पीट पीट कर रोने लगे और जहाँ यह सच है कि इस तुमुल क्रन्दन के बीच बीच, समवेत स्त्री-समाज मालती के चेहरे का सूक्ष्म पर्यवेक्षण भी करता जाता था ( ताकि उस झूठी पीड़ा के नकाब के पीछे छिपे हुए असली भाव को पकड़ ले ! ) वहाँ यह भी सच है कि इसी छाती कूट कूट कर रोने के कारण सब का ध्यान ब्रह्मदेव बाबू के इन सगे-सम्बन्धियों की ओर गया और उन्होंने जाना कि जिस दिवंगत आत्मा की शान्ति के लिए वह लोग यहाँ पर इकट्ठा हुए हैं, ये लोग उसी के निकट संबंधी हैं।

बड़ी देर तक यह रोना चलता रहा और उससे जहाँ इन सगे-संबंधियों की मर्म-वेदना ज्ञापित और विज्ञापित हुई वहाँ इतना और भी हुआ कि मृत व्यक्ति के रक्त-मांस से संबद्ध उन बेचारों के घाव पर एक जो बहुत पतली-सी झिल्ली इतनी देर में किसी किसी तरह चढ़ पायी थी, वह फट गयी और उसके नीचे से फिर वही हरा-हरा जख्म निकल आया ।

रोना चलता रहा, चलता रहा । इन रोनेवालों में सबसे मीर थे कुलदीप के चाचा (यानी ब्रह्मदेव बाबू के छोटे भाई ) रामचन्द्र सिंह जो करीब ही मुसद्दीपुर में रहकर खेतो-बाड़ी करते थे और जहाँ अपने खेतों में जौ-गेहूँ वहाँ दूसरों के खेतों में सदा नये-नये भगड़े बोते रहते थे । खान-दान के पुश्तानों गहनों को लेकर एक अर्से से उनका भगड़ा अपने भाई से चला आ रहा था । उनके ध्यान में यह बात जमकर बैठ गयी थी कि अच्छे-अच्छे वजनी गहने भाईजान ने खुद हथिया लिये और हलकी-फुलकी, दिखौआ चीजें देकर हमको टहला दिया । पिछले सनीचर इसी चोज को लेकर रामचन्द्र बाबू ने पता नहीं क्या कच्ची-पक्की बातें कह दीं कि इधर उनको पोठ फिरो और उधर ब्रह्मदेव बाबू को दौरा पड़ा जो आखिर उनको जान लेकर ही टला ।

भाई की बिगड़तो हुई तबीयत का हाल भी उनको वक्त से ही मिला था मगर बेचारे ऐसी भ्रंशों में फँसे रहे कि आ नहीं पाये और अब आज आये हैं तो उनका कलेजा टुकड़े-टुकड़े हुआ जा रहा है और उनकी आँखों से आँसुओं के बरसाती नाले बह रहे हैं !

---

आज अस्पताल में एक ऐसा मरीज आया है जो सभी डाक्टरों के लिए एक पहेली बन गया है। पेट, दिल, दिमाग, सभी के विशेषज्ञ हर तरह से उसकी जाँच करके हैरान हैं, रोब पकड़ में ही नहीं आ रहा है। कितनी ही बार तो उसके खून की, बलगम का और और भी बहुत-सी चीजों की परीक्षा हो चुकी; कितनी ही बार उसका एक्स-रे किया जा चुका मगर रोग जहाँ का तहाँ है और मरीज है कि उसकी चोखो से पत्थर पिघला जाता है। डाक्टर हक्का-बक्का होकर एक दूसरे का मुँह ताक रहे हैं। नहीं, यह बात थोड़ी गलत है क्योंकि डाक्टर सेन डाक्टर मजूमदार का मुँह निहार रहे हैं और डाक्टर मजूमदार डाक्टर महांती का मुँह निहार रहे हैं और डाक्टर महांती डाक्टर पसरीचा का मुँह निहार रहे हैं—एक दूसरे से आँख मिलाने में उन्हें भग-सी मालूम हो रही है। इनमें से एक एक के पास पचीस पचीस

और तीस तीस साल का तजुर्बा है मगर फिर भी उनकी अक्ल गुम है। ऐसा तो केम ही कभी नहीं आया। जाहिरा कहीं कुछ गड़बड़ो नहीं, शरीर का हर अंग ऐसे काम कर रहा है कि जैसे उसने भी शरीर-शास्त्र की कोई किताब पढ़ रखी हो, पेट में कोई बात नहीं, दिमाग सही-सालिम, खून की हरकत ठीक दबाव ठीक, फेफड़ों में कोई बात नहीं, न आग न पानी—मगर इस सबके बाद भी उसके सीने में जब दर्द उठता तो वह ऐसी दिल दहलानेवाली आवाज में चीखता कि सुननेवाले को पसीना आ जाता। एक बार इस बात पर भी खयाल गया कि कहीं कोई फोडा या नासूर के किस्म की चीज न हो मगर वह बात भी नहीं निकली, कम से कम एक्स-रे में तो नहीं निकली। फिर यह सोचा गया कि उसके रहन-सहन के बारे में पता लगाया जाय, उसमें कहीं ऐसी कोई बात हो जिसने भीतर ही भीतर घुन की तरह उसको खा लिया हो और बाहर से उसका पता न चलता हो। मगर इस तहकीकात से भी कुछ हाथ न लगा क्योंकि यह मालूम हुआ कि वह एक नेक और अच्छी तबीयत और अच्छी आदतों का नौजवान है। किसी ने आज तक उसको शराब को हाथ लगाते नहीं देखा, किसी तरह की बदचलनी का शुबहा भी उस पर करना मुश्किल है, घर में बीबी है, एक बच्चा है, योजना विभाग में इन्स्पेक्टर है, ठीक वक्त से दफ्तर पहुँचता है, जो तोड़कर दिन भर काम करता है और सँभ डलने पर घर के लिए रवाना होता है—यहाँ तक कि जहाँ कुछ लोग उसकी तनदिही की तारीफ करते हैं वहाँ बहुत से लोग ऐसे भी हैं जो इसी बात के लिए उससे चिढ़ते हैं और कहते हैं कि वह दफ्तर को रवायत बिगाड़े दे रहा है। ऐसा आदमी क्या गड़बड़ी कर सकता है, यह सोचने की बात है।

कहने का मतलब यह कि तहकीकात से मामला सुलझने के बदले और भी उलझ गया। रहस्य और भी गहरा हो गया।

डाक्टरों में एक नौजवान डाक्टर बैनर्जी भी थे। कलकत्ते के एम० बी० बी० एस०, अपने काम में निहायत होशियार और मुंह के भी ऐसे

मीठे कि मरीज उनका नाम पूछते हुए अस्पताल में आते थे और वह अगर न मिलते तो गरीबों का मुँह लटक जाता। मरीज का आधा मर्ज तो उनको देखकर और बाकी आधा उनकी बात सुनकर दूर हो जाता था, दवा तो कहने-सुनने के लिए थी।

डाक्टर बैनर्जी को भी इस केस में बहुत दिलचस्पी मालूम हुई और इसलिए और भी मालूम हुई कि उसमें बड़ों-बड़ों की अक्ल चकरा गयी थी। लेकिन बात इतनी ही न थी। कभी कभी खुद डाक्टर बैनर्जी को भी कुछ इसी तरह का एक अजीब-सा दर्द महसूस होता था जिसका सर-पैर कुछ समझ में न आता था, मगर वह होता ऐसा ही, मरीज की रग-रग को तोड़ देनेवाला, जिसका हाल भोगनेवाला ही जानता है। लिहाजा डाक्टर बैनर्जी को यों ही एक खयाल आया कि कौन जाने इस गरीब का दर्द भी वही हो। और उसने इस नामालूम दर्द का पता लगाने का बीड़ा उठा लिया।

सीनियर डाक्टरों ने पहले तो इतना जबर्दस्त केस बैनर्जी जैसे नये आदमी को देने में आनाकानी की लेकिन जब बैनर्जी ने बहुत आग्रह किया तो उन लोगों के लिए फिर कोई उपाय न रहा। दूसरे वह लोग इस केस से तंग भी बहुत आ चुके थे और मन ही मन प्रसन्न थे कि उनके सर से यह बला टली। अब रोगी मरे चाहे जिये उनके सर बात न आयेगी।

बैनर्जी को पक्का भरोसा था कि मैं ठीक रास्ते पर चल रहा हूँ लेकिन ठीक रास्ते पर चलना मंजिल पर पहुँचना नहीं होता। लिहाजा बीस रोज तक मरीज दर्द से छटपटाता रहा और डाक्टर बैनर्जी अपने अनुसंधान में लगे रहे।

बीस दिन बाद उन्होंने मरीज का आपरेशन किया। आपरेशन बहुत नाजूक था, बहुत ही नाजूक, मगर नशतर का घाव बड़ा नहीं था। सात दिन के भीतर मरीज हँसता हुआ बिस्तर से उठ बैठा और जब वह अस्पताल से डिस्चार्ज होकर जाने लगा तो डाक्टर बैनर्जी को अलग एक तरफ ले जाकर बोला—मैं आपका जीवन भर ऋणी रहूँगा जो आपने सदा के

लिए मुझे इस दर्द से मुक्ति दिला दी। आप जिस वक्त नशतर लगा रहे थे उसी वक्त मैं जान गया था कि अब फिर कभी मुझे यह दर्द न होगा क्योंकि ठीक उसी जगह पर मझको हमेशा दर्द होता था और अब तो शायद आपने वह चीज ही निकाल दी—

डाक्टर बेनर्जी ने कहा—हाँ मैंने वह चीज ही निकाल दी....

मरीज बोला—क्या चीज है वह ?

डाक्टर बेनर्जी ने कहा—वह थैली के किस्म की एक चीज होती है, बिल के नीचे भिल्ली में लिपटी हुई रहती है, दिल की घड़ी की लटकन समझिए एक तरह का। जैसे घड़ी की लटकन समय की सूचना देती है वैसे ही यह लटकन भी किन्हीं बातों की सूचना देने के लिए शुरू शुरू में बनी होगी मगर अब उसका कोई काम बाकी नहीं रहा इसलिए अब वह उल्टे तकलीफ पहुँचाने लगी है।

मरीज ने जानकार आदमी की तरह कहा—जी हाँ, सभी डाक्टर कहते हैं कि अपेण्डिक्स बिलकुल बेकार चीज है, उसको निकाल देना ही ठीक होता है।

बैनर्जी ने कहा—जी हाँ आपने बिलकुल ठीक कहा। अपेण्डिक्स कतई बेकार चीज होती है मगर यह एक दूसरी थैली है जो मैंने अलग की है। आपका अपेण्डिक्स तो ठीक है। आपने तो खुद अपनी एक्स-रे फोटो देखी है। यह कुछ और चीज है।

मरीज ने कहा—मगर फोटो में तो कुछ भी नहीं मिला था ?

बैनर्जी ने कहा—था नहीं तो मैंने कहाँ से पा लिया ? मगर हाँ वह चीज ऐसी है कि सबको जल्दी नजर नहीं आती। मुझे तो चूँकि खुद इसी किस्म का दर्द हो चुका है....

मरीज ने ताज्जुब में पड़ते हुए कहा—अच्छा तो आपको भी यह दर्द हो चुका है डाक्टर साहब ? बैनर्जी ने कहा—हाँ, कई बार, और सबसे भयानक दर्द तो उस वक्त हुआ था जब इन्हीं डाक्टर मजूमदार ने

एक बार मेरी आँखों के सामने एक गरीब के बच्चे....मगर छोड़ो उस बात को....

आपरेशन का असर दिखायी पड़ने लगा था—मरीज के चेहरे पर एक चिकनी मुस्कराहट खेलने लगी थी। उसने अपनी उसी मुस्कराहट के चिकन फूल बिखेरते हुए धीमे से कहा—आपने मुझ पर बड़ा एहसान किया है डाक्टर साहब। यह तो लीजिए अस्पताल की फीस और यह लीजिए सौ रुपये....है....है....आपके पान-पत्ते के लिए....

बैनर्जी ने मुसकराते हुए कहा—वह सौ रुपये आप अपने पास ही रखिए। मैंने अभी अपनी वह थैली नहीं निकलवायी है। किसी अच्छे डाक्टर की तलाश में हूँ !

---

लक्ष्मी कितना मान-मनौवल माँगती है, यह देखना हो तो एक दिन....या अगर एक दिन बहुत नाकाफी हो तो....एक हफ़ता कृष्ण वल्लभ बाबू के साथ रहकर देखो। तब पता चलता है कि पैसे डाल में नहीं फलते। एक एक मिनट उन्हीं के एकाग्र मनन-चिन्तन में लगाना पड़ता है, तब कहीं जाकर लक्ष्मीजी अपने उपासक पर प्रसन्न होती हैं। बेचारे कृष्ण वल्लभ बाबू रात को ठीक से सो भी पाते हैं या नहीं, कहना मुश्किल है। सबेरे से जो चक्कर शुरू होता है तो रात के बारह एक बजे तक बराबर चलता है। दिन का आरंभ गंगास्नान से होता है और अन्त दिन भर की कमाई का लेखा-जोखा मिलाने में। खाना खाने तक का अवकाश नहीं मिलता, इसलिए दिन का खाना दूकान पर ही भेजा जाता है।

काहे को दूकान है उनकी ? स्वयं कृष्णवल्लभ बाबू से अगर यह सवाल किया जाय तो वह अपनी गंजी चाँद खुजलाने लगेंगे। उनकी दूकान चौक की सबसे बड़ी दूकानों में से है मगर

२५

उस दुकान में क्या मिलता है, यह बतलाना आसान काम नहीं है क्योंकि मिलने को वहाँ पर दुनिया की हर चीज मिलती है—एक नन्हीं-सी पिन से लेकर रात की मधुर शय्यासंगिनी तक—मगर दिखायी कुछ भी नहीं पड़ता। दिखायी जो पड़ता है वह बस इतना ही : चार मेज-कुर्सियाँ जिनमें से एक पर कृष्णवल्लभ बाबू खुद बैठते हैं और तीन पर उनके बर्नर बैठे लिखत-पढ़त करते रहते हैं, (पता नहीं उन्हें कितनी चिट्ठियाँ और कितना हिसाब लिखने को रहता है) और इन कुर्सी-मेजों के अलावा तीन-चार अलमारियाँ जिनमें पता नहीं क्या क्या अलाय-बलाय भरा है। उनके भीतर भाँककर देखने का मौका तो मुझे कभी मिला नहीं, लेकिन लोगों से जो कुछ सुना है उसके आधार पर अनुमान कर सकता हूँ कि उनमें और तमाम चीजों के साथ होंगे भारतीय और योरोपीय कौकशास्त्र के अनेक मोटे मोटे सचित्र ग्रन्थ, आर्लिंगन-बद्ध तरुण-तरुणियों के फोटो ऐलबम, कुछ पीले जर्जर कागज पर और कुछ चिकने मोटे कागज पर आलातरीन छपे हुए।

इस तरह आप उन्हें कोई एक संज्ञा दे सकें या न दे सकें, कृष्णवल्लभ बाबू बहुत बड़े बिजनेसमैन हैं और जो उनकी सर्वज्ञता और सर्वशक्तिमत्ता से परिचित हैं वह अपनी हर ज़रूरत में उनके पास पहुँचते हैं और कृष्णवल्लभ बाबू कभी उन्हें निराश होने का मौका नहीं देते।

जाहिर है कि एक साथ इतने सब काम करनेवाले आदमी को समय की कमी होगी। लेकिन समय की चाहे जितनी कमी हो, कृष्णवल्लभ बाबू के नेम-धरम में कभी कोई चूक नहीं होती। जाड़ा, गर्मी, बरसात, बारहों महीने वह ठीक चार बजे बिस्तर छोड़ देते हैं। उसके बाद नित्य कर्म से निवृत्त होकर वह गंगा स्नान के लिए निकल जाते हैं। घर में मोटर है लेकिन गंगा स्नान के लिए वह पैदल ही जाते हैं, जब तक कि ऐसी ही कोई खास बात न आ पड़े। कहते हैं पैदल जाने में उन्हें जो आत्मिक शान्ति मिलती है वह सवारी पर जाने में नहीं। आत्मिक

स्नान में और पैदल गंगा स्नान में उनके शरीर को बहुत लाभ पहुँचा है, इतना कि इग पचाम बरम की उम्र में भी वह तीस बरम के कडियल जवान मालम होते हैं । न उनके चेहरे पर कहीं एक झुर्री है न एक बाल पका है न एक दाँत में कभी दर्द हुआ है न आँखों की ज्योति जरा भी मन्द पड़ी है । जिस वक्ता वह चरन-वन्दन लगाये गंगा स्नान में लौटते हैं उस वक्ता बस ऐसा मालूम होता है कि मात्ता भगवान् विष्णु पृथ्वी पर उतर आये हैं ।

आमगम सब जगह उनकी बड़ी कीर्ति है और जब किसी को नेम-घरम के पक्के किसी आदमी का उदाहरण देना होता है तो सबसे पहले उसका ध्यान कृष्ण वल्लभ बाबू पर जाता है । घर में लेकर गंगा जी तक के उम एक मील के रास्ते में कुछ भी नहीं तो तीस-चालीस आदमी उन्हें श्रद्धापर्वक प्रणाम करने हैं और क्यों न करें, उनके जैसा कोई दूसरा आदमी भी तो नहीं है । किसी की बहू-बेटी पर उन्होंने आज तक कुदृष्टि नहीं डाली । और पैसे का घमण्ड भी नहीं । जिस आदमी के शहर में चार चार मकान हों....

टोले-पडोस में कहीं मूडन हो, कनछेदन हो, यशोपवीत हो, शादी-व्याह हो, कृष्णवल्लभ बाबू को जरूर बुलाया जाता है और जब तक वह न आ जायें तब तक उपस्थिति पूरी नहीं समझी जाती और काम शुरू नहीं किया जाता । सभी घरों से उनका बात-व्यवहार है और देने-लेने में भी कोई उन्हें कंजूस नहीं कह सकता । और मुँह के तो इतने मीठे हैं कि जैसे फूल झड़ते हैं । कभी किसी से तु-तड़ाक करके बात नहीं करते । आहार में कट्टर वैष्णव हैं, मांस-मदिरा को उन्होंने हाथ नहीं लगाया आज तक ।

( २ )

दूकान बन्द करके वह घर पहुँचे तो वही रोज के दस बजे थे । बच्चे सब सो गये थे और बीबी बैठी रामायण बाँध रही थी । कृष्ण वल्लभ बाबू के तेवर चढ़े हुए थे और घर में घुसते ही उन्होंने पहला सवाल किया—

हिरवा कहीं से रुपये लाया ? पत्नी ने डरते-डरते कहा—नहीं तो । हीरा कहाँ आया । कृष्णवल्लभ का पारा और चढ़ गया—यह हिरवा बहुत कामचोर हो गया है । कितनी ही जगह उसे बमूली के लिए जाना था, लगता है कहीं गया-वया नहीं । उसकी मक्खी जाये ! दिन-रात भंग पिये पड़ा रहता है । कल सुबह सखी से उसे ताकीद करना होगी । इस तरह तो सभी रकम मारकर बैठ जायेंगे । मोधे का जमाना नहीं है ।

यह सब बातें उन्होंने कही नहीं, मन में सोचीं और न जाने क्या बड़-बड़ाये, जो कि उनकी स्त्री की समझ में नहीं आया, और कभी नहीं आता । उसकी समझ में बस इतना आता है कि स्वामी कभी प्यार से नहीं बोलते । इस बात से उसे पीडा होती है लेकिन प्रश्न कोई नहीं जागता क्योंकि रामायण ने उसके मन का उचित संस्कार कर दिया है । अपनी सच्ची स्थिति का ज्ञान उसे हो गया है और जो नियति है उसके विरुद्ध शिकायत करके होगा भी क्या । लेकिन इसकी पीडा न होती हो, ऐसी बात नहीं है । तो भी वह इसी को अपना सौभाग्य मानना सोख गयी है कि उसके स्वामी दूसरी किसी स्त्री के पास नहीं जाते । यह भी कम संतोष की बात नहीं है । लेकिन संतोष और आनन्द क्या एक ही चीज है ? इतने बरस से उसका और उसके पति का साथ है, दुख-सुख सभी कुछ साथ भेला लेकिन इस सबके बाद भी वह क्या अपने पति के पास पहुँच सकी ? उसको तो कभी-कभी लगता है कि जैसे वह दिन-ब-दिन और दूर होती जा रही हो । पहले तो जब यह काम नया ही नया शुरू किया था, भूले-भटके एकाध बात हो भी जाती थी मगर अब तो इन दस-पंद्रह बरसों में दस-पंद्रह बातें भी न हुई होंगी । हाय पैसा, हाय पैसा । घरवाले तो जैसे मर गये इनके लेखे । न बच्चों से कभी एक बात न किसी से । क्या होगा इतना पैसा जमा करके । कभी तो बच्चों से कुछ पूछ लिया करें, क्या पढते हो, क्या खेलते हो....

(नहीं, कृष्णवल्लभ बाबू की स्त्री ने ऐसी कोई बात कही नहीं, सोची भी नहीं । वह तो पति को खाना खिलाने की बात सोच रही थी ।)

कृष्णवल्लभ बाबू का यह कायदा नहीं है। उनका दृढ़ विश्वास है कि स्त्री से, बच्चों से, ज्यादा मेल-जोल बढ़ाना ठीक नहीं होता। शासन करना है तो कम से कम बोलो। और घर में तो शासन करना ही ठीक है, नहीं सब अपने-अपने मन की करने लग जायें। यही सब बातें सोचकर कृष्णवल्लभ बाबू घर के भीतर दाखिल होते ही बिल्कुल दूसरे आदमी हो जाते हैं। हँसना-बोलना सब बाहरवालों के लिए है, क्योंकि उससे बिजनेस को लाभ होता है। फौरन न भी हो तो क्या है, मगर होता है। घर में आदमी अच्छी तरह बोले या त्योरी चढ़ाये रहे, क्या फर्क पड़ता है।

स्त्री रामायण वद करके उठने ही वाली थी कि कृष्णवल्लभ बाबू ने शेर की तरह गुराँठें टुंग पृष्ठा—और कोई आया था ?

स्त्री ने कहा—हाँ, वह आये थे....

—कौन ?

—वही जो आते हैं, भला सा नाम है, कई बार आ चुके हैं....

—कामता प्रसाद ?

—हाँ, हाँ, कामता प्रसाद....

—फिर पैसे लेने आया होगा। तीन चार सौ तो ले जा चुका, देने का नाम नहीं....देगा भी क्या, पीने से कुछ बचे तब तो दे....मैंने तो तय कर लिया है कि अब इन्कार कर दूँगा। पुरानी दोस्ती का खयाल करके दे देता था, कुएँ में भोंकने को मेरे पास पैसा नहीं है।

—कह रहे थे बहुत जरूरत है....

—पीने के लिए न होगी, और क्या। रोज शाम को पोता है मरदूद। किसी भी दिन जाकर देख लो। एक दिन जो नागा करता हो।

—पीनेवाले ऐसे ही तो पीते हैं....

—तुम तो ऐसे कह रही हो जैसे सारी ज़िन्दगी....

—मेरे एक मामा बड़े पियक्कड़ थे।

कृष्णवल्लभ बाबू ने कहा—अच्छा । । ।....और स्त्री की बात का

छुपा अर्थ खोजने में लग गये। आज पत्नी की बातों में उन्हें कुछ विद्रोह की गंध मिल रही थी। तभी उसने फिर कोई बात कही।

—मैं तो बाहर निकली नहीं, प्रदीप से बातें हुई। कह रहे थे, किसी लड़के की फीस जमा करनी है।

—फीस जमा करनी है ! सब पैसा खसोटने के बहाने हैं। पीने के लिए चाहिए होगा, पीने के....दानी कर्ण का फिर से जनम हुआ है.... ढोंगी....लबारिया....

—भूठ तो बोलते हैं शराबी लोग, पर दिल के अच्छे होते हैं। मेरे मामा....

—तुम्हारे मामा क्या कहते थे ?

—प्रदीप कहता था....

—क्या कहता था प्रदीप ?

डर और घबराहट के मारे स्त्री को पसीना आ गया। वह क्या कहे और क्या न कहे। पर आज उसको भी कुछ हो गया था, कोई जैसे भीतर बैठा-बैठा उसको उकसा रहा हो। हिम्मत बटोरकर बोली—प्रदीप कहता था कि कामता बाबू सचमुच गरीब लड़कों की मदद करते हैं....

परम वैष्णव कृष्णवल्लभ बाबू का इस समय गुस्से के मारे बुरा हाल था, जो करता था कि खून पी जायें, घर में बैठी-बैठी नुक्ताचीनी करती है !

बोले—प्रदीप और कुछ नहीं कहता था ! घर में जो रिफ्यूजी लड़की डाल ली है....

—आप ही तो कहते थे कि ब्याह कर लिया है....

—ब्याह ! इसको ब्याह कहते हैं ! जब हमल रह गया तो चारा भी क्या था ?

—क्यों, चारे की क्या बात है, छोड़ देते, जैसा और बहुत-से मर्दुए करते हैं....कोठों पर औरतें पहुँचती और कहाँ से हैं....आपको पता नहीं ?

प्रेमलता ने कहा और जबान काट ली कि यह मैं क्या कह गयी । अग्न  
यह क्या पागलपन मेरे ऊपर सवार है । गम्से के मारे काँपते हुए कृष्ण  
वल्लभ बाबू भी इस वक्त ठीक यही बात सोच रहे थे । यह औरत जिसके  
मुँह में जबान नहीं थी, आज....

उन्हे फिर कुछ होश नहीं रहा और वह जोर से चीखे—चुप....अब  
जो एक भी बात मुँह से निकाली....

प्रेमलता ने फिर कोई बात मुँह से नहीं निकाली और चुप हो रही ।

कृष्णवल्लभ बाबू ने फिर डपटा—देखता हूँ जबान बहुत कतरनी की  
तरह चलने लगी है....

प्रेमलता खामोश रही ।

कृष्णवल्लभ बाबू ने उसी बिफरी हुई हालत में फिर कहा—यहाँ बैठी  
बैठी कानून छाँटती हो !....

प्रेमलता फिर भी खामोश रही ।

प्रेमलता की ओर से क्षमा-याचना की कोई बात आती न देखकर उनके  
दिमाग का पारा और चढ़ता जा रहा था । बोले—तुम्हीं लोगों के लिए  
तो सब करता हूँ, कि अपनी छाती पर बाँधकर ले जाऊँगा !....कोल्हू के  
बैल की तरह दिन-रात पिसता हूँ, बस काम से काम, न दायें देखता हूँ न  
बायें, दूसरी किसी औरत की तरफ कभी आँख उठाकर नहीं देखा, उसी  
का यह सिला है कि अपने ही घर में मुझे जमाने भर के शराबियों-कबाबियों  
की गुनगाथा सुनने को मिल रही है....दे दो न सब उठाकर उस कामता  
के बच्चे को....

प्रेमलता इस बीच न जाने कब उठकर रसोई में चली गयी थी ।

संतरी जैसे तीन बार 'हुकुम सदर' (हू कम्स देयर) कहकर जब कोई  
जवाब नहीं पाता तो किञ्चित् आश्वस्त हो जाता है कि सब ठीक है, कहीं  
कोई नहीं है, वैसे ही कृष्णवल्लभ बाबू का मन भी किञ्चित् आश्वस्त  
हुआ लेकिन फिर भी जैसे कोई चीज करकती रह गयी कि नहीं, जवाब वह  
भले न दे पर अँधेरे में कुछ है जरूर....

उत्पला मुकजी को कौन नहीं जानता ? और भला कौन ऐसा बज्र नीरस आदमी होगा जिसने, चाहे दूर से ही हो, एक बार भी उनकी रूप-सुधा का पान नहीं किया ? ऐसी सुन्दर, ऐसी कमनीय नारी-मूर्ति कब-कब देखने को मिलती है । साक्षात् उर्वशी । मखमल-जैसी त्वचा; नाम के अनुरूप ही कमलिनी-जैसा गुलाबी गौरवर्ण; हरे-हरे नए बांस-जैसा लंबा, सीधा, छरहरा शरीर; पतले पतले रस-भरे होंठ; हिरनोट जैसी चंचल नीली आँखें— जो उस विद्युल्लता को देखता, अवाक् देखता रह जाता । उत्पला वास्तव में रूप की सम्राज्ञी थी, सौन्दर्य की अधिष्ठात्री देवी थी । कितनों ही की आँखों की नोंद उसने चुरा ली थी, जाने या अनजाने कितनों ही का विवाहित जीवन अभिशप्त कर दिया था । सत्रह साल की उत्पला जब बी० ए० में आयी थी और लोगों ने पहली बार उसके रूप का दर्शन किया था तभी से आटे भरना और पेड़ के तनों पर उसका नाम और तीर से बिधा हुआ अपना दिल खोदना शुरू

कर दिया था। उस बात को अब पंद्रह बरस होने को आये लेकिन लोगों के हृदय पर आज भी उसका वैसा ही राजत्व है। इधर दशाब्दियों से किसी सुन्दरी का इतना लम्बा राज्य-काल देखने में नहीं आया। और कैसे हो, उत्पला के लिए समय जैसे ठहर-सा गया है। इन पंद्रह बरसों में न जाने कितनी तारिकाओं का उदय हुआ और अस्त हुआ लेकिन उत्पला का रूप वैसे का वैसा है। आज भी उसमें वही आग है। बस इतना हुआ है कि जो कभी गुलाब की कली थी वह आज गुलाब का फूल है, जिसके रूप-रंग, रस-गंध में समय-देवता ने वृद्धि ही की है और लगता नहीं कि यह फूल कभी बासी पड़ेगा, इसकी पंखुरियाँ कभी सूखेंगी, सिकुड़ेंगी, बलेंगी। यह फूल शायद हमेशा-हमेशा रहने और लोगों की सौन्दर्य-वासना को आप्यायित करने के लिये बनाया गया है। इसीलिए उसका दाग भी कभी लोगों के सीनों पर से मिटने वाला नहीं है। उन पेड़ों की छाल तो तब से न जाने कितनी बार झरी होगी और नयी छाल आयी होगी और वो अक्षर जो कभी खोदे गए थे, मिट गए होंगे, लेकिन जो मूर्ति हृदय-पट पर खुदी हुई है, उसकी रेखायें तनिक भी धूमिल पड़ी नहीं जान पड़तीं। तब के छात्र आज अपनी-अपनी प्रतिभा और अन्य सामर्थ्य के अनुसार ऊँची या नीची कुर्सियों पर बैठे हैं; उनमें से अधिकांश विवाहित हैं, एक या अनेक सन्तानों के पिता हैं लेकिन उत्पला के रूप का जो जादू उन्होंने अपनी पहली जवानी में देखा था वह आज भी उनकी आँखों में बसा हुआ है, जो तिव्र मधुर संगीत तब सुना था उसकी मीढ़ आज भी हृदय के भीतर गूँज रही है....

(और तभी जैसे किसी के हाथ से मजीरे छूट कर गिर पड़े और झन्न को आवाज हुई....)

उत्पला का ब्याह हो रहा है ! सुना तुमने, उत्पला का ब्याह हो रहा है ! अच्छा तो उत्पला का ब्याह हो रहा है ? किससे ? कब ? कैसे ?

सब हैरान हैं । मगर सिर्फ हैरान नहीं हैं, नाराज भी हैं । कि जैसे कोई उनकी चोज उठाकर उनसे बिना पूछे किसी को दे दे ! पूछिये, आप काजी हैं कि मुल्ला ? किस अदालत से आपको उत्पला मुकर्जी पर यह अधिकार मिला ? इसका किसी के पास जवाब नहीं । लेकिन तब भी लाग नाराज हैं । वाह, यह भी कोई बात हुई । जो स्त्री अपने इतने-इतने ऐसे-ऐसे प्रेमियों के रहते हुए अब तक कुमारी रही आई, उसे अब यह क्या दिल्लगी सूझी ?

मगर खैर, गुस्सा धीरे-धीरे ठण्डा पड़ गया ।

अब उनके मन में कुतूहल जागा, बड़े जोर से, कि जैसे झाँधी आये—आखिर वह आदमी है कौन ? कौन पुरुषसिंह है वह जिसके लिए उत्पला मुकर्जी ने अपना व्रत भंग किया ?

और जब उनको यह पता लगा कि वह पुरुषसिंह पैंसठ बरस का एक बुढ़ा है तो उनके दिल बैठ गये । आखिर नीयत डोली भी तो काहे पर ? जहाँ एक से एक सुन्दर, स्वस्थ, गबरू जवान उसकी ड्योढ़ी पर माथा रगड़कर रह गये वहाँ अब ईमान बिगड़ा भी तो पैंसठ बरस के एक बुढ़े पर जिसका एक पैर यों ही मसानघाट की तरफ को उठा हुआ है ! शास्त्रकारों ने सच कहा है स्त्री का चरित्र और पुरुष का भाग्य भगवान् भी नहीं जानता, बेचारा आदमी किस खेत की मूली है !

गनीमत हुई कि लोगों ने श्री मन्मथ सेन को देखा नहीं था वर्ना निश्चय ही दस-बीस लोगों का हार्ट फेल हो जाता । पता नहीं मन्मथ उनके माता-पिता का दिया हुआ नाम है या बाद में दोस्तों ने मजाक में रख दिया मगर जिसने भी रक्खा हो इससे ज्यादा क्रूर मजाक दूसरा नहीं हो सकता था । नाटा कद, भारी बदन, हंडिए-जैसी तोंद, तंग माथा, चुन्दी-चुन्दी आँखें, काफी स्याह रंग—बिलकुल मेढक या कछुए का नक्शा था । ऐसी दिव्य आकृति लेकर भी मन्मथ सेन ने कभी किसी स्त्री का मन मथा हो, इसका

कहीं कोई इतिहास नहीं मिलता। मगर जो भी हो नाम का इतना गुप्तो मानना ही पड़ेगा कि उत्पला-जैसी साक्षात् उवशी-मेनका-रति उन ऐसी लट्टू हो गई कि वरमाला उनके गले में डाल दी। जहाँ दूसरे टापते रह गये पैंसठ साल के इस बुढ़े ने रणथम्भोर का यह किला जल लिया।

मगर गनीमत यही थी कि किसी ने भी मन्मथ सेन का रूप-दर्शन न किया था। अभी तो लोग इतना ही कहते थे कि न जाने किस खूसट बुढ़े को गले बाँध लिया, तब तो बात ब्रह्मपिशाच और डोम-कहार तक पहुँच जाती जो कि भारतीय विज्ञान के लिए बहुत बड़े अपमान की बात हो। क्योंकि श्री मन्मथ सेन, रूप उनका जैसा भी हो, आधुनिक भारतीय विज्ञान की एक बड़ी विभूति हैं।

अपने तीस वर्ष के अध्ययन और शोध के फलस्वरूप श्री मन्मथ सेन ने जब आज से प्रायः दस वर्ष पूर्व अपना अंकों का नया सिद्धान्त प्रतिपादित किया था, तो गणित की दुनिया में एक छोटा-मोटा भूचाल आ गया था और जहाँ चार विद्वान् आपस में मिलते वहीं श्री मन्मथ सेन के इस नए सिद्धान्त की चर्चा छिड़ जाती। धीरे-धीरे संसार की सभी जानी-मानी विज्ञान की पत्रिकाओं में उनके इस सिद्धान्त पर लम्बे-लम्बे लेख निकले और वर्ष के अन्त होते-होते यह बात मान ली गई कि भारतीय विज्ञान के आकाश में एक नये ज्योतिष्क का उदय हुआ है और अधिकारी विद्वानों ने इस बात को कहा कि श्री मन्मथ सेन ने गणित-शास्त्र को अपनी यह विशिष्ट दे देकर, जिसे अब आप उच्च गणित की हर पुस्तक में सेन्स लाँ आफ नम्बर के नाम से देख सकते हैं, आर्यभट्ट, न्यूटन और आइंस्टाइन की परम्परा में एक नई कड़ी जोड़ी है।

यह बात जान लेने के बाद फिर यह समझने में देर नहीं लगती कि उत्पला ने श्री मन्मथ सेन से विवाह क्यों किया। उत्पला ने श्री मन्मथ सेन के रूप में भारतीय विज्ञान को अर्घ्य चढ़ाया है। सदा अपनी बहुमूल्य वस्तु अर्घ्य चढ़ाई जाती है। उत्पला के पास सबसे बहुमूल्य वस्तु थी उसा

रूप, उसका जीवन। उसी को उसने नैवेद्य के रूप में श्री मन्मथ सेन के चरणों में डाल दिया।

और तो सब कहने को बातें हैं। मैं उन पर विश्वास नहीं करता।

कहनेवाले कहते हैं कि सभी शादियों की तरह यह शादी भी एक सौदा है। उँह, कहने वालों को भली चलाई, उन्होंने तो जानको मैया तक को नहीं छोड़ा। डेढ़ हाथ की जीभ भी तो होती है उनकी....

अब चाहे डेढ़ हाथ की जीभ हो चाहे तीन, बात जो कहते हैं सुननी ही पड़ती है—

वही शादी सौदा नहीं होती जिसमें खूँसट बुड्ढे बैठकर लेन-देन की पाई-पाई तय करते हैं, तिलक में कितना, दहेज में कितना, द्वारचार में कितना, कोहबर में कितना, कुँअर कलेवा में कितना, कितने का गहना, कितने का कपड़ा, कितने का क्या, कितना नकद और इस तरह तराजू के एक पलड़े में लड़की और एक में लड़के को बिठालकर बाँट-बटखरे से तोला-माशा उनका वजन बराबर करते हैं। ऐसी शादी सौदा नहीं तो क्या है? रुपये में सत्रह आने बनिए का सौदा....मगर यह जो दूसरा शादी होती है, बड़े लोगों की शादी, पढ़े-लिखों की शादी जिसमें लड़का भी एम० ए० बी० ए० पास और लड़की भी एम० ए० बी० ए० पास, जिसमें कहने के लिए मुहब्बत को दखल होता है और मुँह से लेन-देन की एक बात नहीं कही जाती, यह भी तो कुछ कम सौदा नहीं होती, फर्क बस इतना होता है कि यहाँ सौदा मुँह से नहीं निगाह की बारीकी से तय किया जाता है—उसी तरह जैसे बाज़ार में कुँजड़ा भी होता है जिसके यहाँ एक-एक छदाम के लिए घण्टे भर फ़िक्रफ़िक्र होती है, सर-फुड़ौवल होता है और ह्लाइट वे लेडलॉ-जैसी बड़ी-बड़ी दूकानें भी होती हैं जहाँ सभी चीजें मिलती हैं और हर चीज का दाम पहले से तय होता है और खरीदार अपनी जरूरत और अपनी बिसात के मुताबिक मुँह से एक शब्द बोले बिना हजार या लाख रुपये का माल खरीदकर अपने घर आ जाता है।

लोगों की बात का विश्वास किया जाय तो उत्पला मुकर्जी और श्री

मन्मथ सेन का विवाह भी ऐसा ही एक सौदा था। मुँह से किसी ने कुछ नहीं कहा मगर दोनों अच्छी तरह समझ रहे थे कि कौन क्या दे रहा है और कौन क्या पा रहा है।

जिस तरह दिया बुझने से पहले एक बार जोर से भभकता है उसी तरह वासना की लौ भी बुढ़ापे में एक बार जोर से भभकती है।

विवाह के लिए बहुत बार सन्तान के बहाने का भी सहारा लिया जाता है, सन्तान नहीं होगी तो श्राद्ध कौन करेगा, पितरों का तर्पण कैसे होगा। मगर ऐसा समझने के लिए कोई उचित प्रमाण नहीं है कि जब श्री मन्मथ सेन अपनी पहली दो पत्नियों से कोई सन्तान नहीं प्राप्त कर सके तो इस वाद्व्य-वेला में उत्पला से ही उन्हें कैसे सन्तान की प्राप्ति हो जाएगी। मगर खैर।

एक कारण शायद यह भी हो कि सुन्दरी पत्नी समाज में प्रतिष्ठा देती है। श्री मन्मथ सेन के सम्मान में अक्सर आयोजन हुआ करते थे। उन अवसरों पर मन्मथ बाबू को अपने साथ किसी रूपसी का न होना खल जाता था, और यह कमी और भी खलती थी तब जब वह अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलनों में विदेश जाते और वहाँ बड़े-बड़े वैज्ञानिकों के साथ अक्सर उनको अल्पवयसी पत्नियाँ दिखाई देतीं और तब श्री मन्मथ सेन का जी मसोस उठता कि जैसे उनके अमरत्व में यही एक कमी रह गई है।

ठीक है, उस स्त्री को देने के लिए उनके पास यौवन नहीं है, स्वास्थ्य नहीं है मगर उससे क्या, यश तो है, धन तो है। इनसे पूर्ति न होगी क्या?

क्यों न होगी, उत्पला को ऐसे ही व्यक्ति की तलाश है। यौवन और स्वास्थ्य तो वह जहाँ भी चाहेगी, पा लेगी, ऐसा यश कहीं मिलेगा? इतने बड़े वैज्ञानिक की धर्मपत्नी होने का सौभाग्य क्या छोटी चीज है?

खास्तगीर, मनमोहन, इदरीस—उत्पला के पुराने मित्र—निहायत खूबसूरती से सजे हुए गोल कमरे में बैठे उत्पला की प्रतीक्षा कर रहे थे। लगभग दस मिनट बाद उत्पला ने सब तरफ नजर डालते हुए सभाजी की

तरह कमरे में प्रवेश किया। कमरे में चारों ओर सुगन्धि भर उठी। तीनों मित्र संभ्रमपूर्वक उठ खड़े हुए। उत्पला ने उनको बैठने का इशारा किया। बातें सबके दिलों में खलबला रही थीं। जाहिरा तो ये लोग उत्पला को बधाई देने आये थे और इतने चुपके-चुपके शादी कर लेने के लिये शिकायत करने आये थे मगर उनका असल मकसद था उत्पला के चेहरे की नई रंगत को देखना और उसकी नई इबारत को पढ़ना। यानी कि शादी तो जैसे हो गई मगर इसका मतलब क्या यह समझा जाय कि वह अगले वक्तों का साथ उठना-बैठना, घूमना-फिरना सब हवा हो गया ?

सबने गौर से उस लिखावट को पढ़ा और अंखबतियाँ कीं और एक हल्की-सी मुसकराहट उनके चेहरे पर खेल गई, नहीं सब ठीक है।

मनमोहन ने बात शुरू की—अरे भइ, इतने चुपके-चुपके ब्याह करने की क्यों ठान ली ? हम क्या उड़ा ले जाते तुम्हारे राजकुमार को ! किसी को कानोंकान खबर तक न हुई।

यह क्या कोई ऐसा-वैसा ब्याह था ? यह तो विराट् के प्रति उसका समर्पण था। इसकी शोभा गम्भीरता में है।

इसी बात को उत्पला ने इस प्रकार शब्दों में रखा—हर चीज का वक्त होता है। बुढ़ों का ब्याह....

पहले की बात होती तो इन दोस्तों ने लपक कर उसका मुँह बन्द कर दिया होता, मगर आज साहस नहीं हुआ। मनमोहन ने अपने दोस्तों की तरफ देखते हुए कहा—चलो भाई, घर चलें....

इदरोस कुछ नहीं बोला, बस मुसकराता रहा, एक अजीब बाँकपन से। उसको उत्पला की यह अदा अच्छी लगी। बोल के उस नन्हें-से टुकड़े में उसे अमृत सम्भावनाएँ दिखाई दीं।

खास्तगोर का ध्यान कहीं और था। बंगाली होने के नाते वह अपने को सहज ही उत्पला का अधिक आत्मीय मानता था और जब-तब बंगला में एकाध बात करके अपनी इस विशेष आत्मीयता की पुष्टि कर लेता था। इन लोगों के साथ एक ही जमीन पर खड़े होकर बात करना उसे मंजूर

न था। इस समय उसका ध्यान पश्चिमी दीवार पर बने हुए एक चित्र पर जमा था जिसमें एक साँवले रंग की तरुणी किसी बौद्ध भिक्षु को अपने घड़े से पानी पिला रही थी। तरुणी अस्पृश्य वर्ण की है और बौद्ध भिक्षु, भिक्षु आनन्द हैं।

चित्रकर्त्री का नाम चित्र पर काफी बड़ा-बड़ा अंकित था, तो भी खास्तगीर ने पूछना जरूरी समझा—तुमि एंकेचो ?

उत्पला की मादक चितवन ने जवाब दिया—नहीं तो क्या....

खास्तगीर ने गद्गद् होते हुए कहा—भारी सुन्दर....

इसके बाद फिर इधर-उधर की कुछ बातें हुईं और उस दिन की मजलिस खतम हुई। उत्पला को अपने पति के साथ किसी सभा में जाना था।

इसी तरह कई महीने बीत गये। दोस्तों का आना-जाना बराबर बना रहा। अक्सर हो ये तीनों मित्र मनमोहन की काली डि सोटो में बैठकर आ जाते; गप्पाष्टक की महफिल जमती, चाय और कॉफी का दौर चलता और हँसी-ठहाके के बीच किसी को घड़ी की सुई का खयाल न रहता। यानी कि जिन्दगी एक मुस्तकिल कार्निवाल थी जिसमें कभी ये दोस्त थे तो कभी कुछ दूसरे, जिसमें उत्पला की कुछ सहेलियाँ भी थीं। मगर इस कार्निवाल में मन्मथ बाबू की कोई जगह न थी। किसी ने कभी उनसे मिलने की खाहिश जाहिर नहीं की और अगर भूल से कभी किसी ने की भी तो उत्पला एक न एक बहाने से टाल गई। और अगर कभी पकड़ ही गई तो बुलाकर परिचय करा दिया। मगर अक्सर यही होता कि इधर ड्राइंग रूम में महफिल जमी होती उधर मन्मथ बाबू अपने कमरे में काम करते रहते।

और उनके काम का कहीं और छोर न था। कुछ तो वजह उसकी यह थी कि अब तक वह ऐसे बहुत-से काम हाथ में लेते जाते थे, जैसे

इंटर तक की कापियाँ जाँचना, जिससे उन्हें कब का हाथ खींच लेना चाहिए था। मगर बात यह थी कि उनकी पैसे की भूख का कहीं अन्त न था। जिस भी काम में दो पैसा होता उसमें उनकी रुचि होना जरूरी था। उनका गणित आसमान में उड़ानें भरनेवाला गणित नहीं था। उनका गणित जमीन पर चलता था। जिन्दगी की हर चीज उन्होंने गणित के फार्मूले में बाँध दी थी।

मिसाल के लिये मन्मथ बाबू साल भर एक ही ब्लेड से हजामत बनाते थे। उनका कहना था कि लोगों को ब्लेड ठीक से इस्तेमाल करना नहीं आता वरना एक ब्लेड साल भर के लिये काफी होता है। विधि बहुत सरल है। दोनों तरफ धारवाला ब्लेड लो। दिन मुकर्रर कर लो। एक दिन एक धार से दाढ़ी बनाओ, दूसरे दिन दूसरी धार से। फिर ब्लेड को पलटकर दाढ़ी बनाओ। इस तरह दो की चार धारें हो जाती हैं। पारी बांध देने से चारों धारों पर बराबर जोर पड़ता है और ब्लेड की आयु बहुत बढ़ जाती है। फिर भी ब्लेड अगर कभी कुन्द हो ही जाय तो शीशे की सिल्ली पर रगड़कर उसे तेज कर लो। करके देखो तब पता चलेगा एक ब्लेड की उम्र कितनी ज्यादा बढ़ाई जा सकती है। ऐसी ही छोटी-मोटी बचतों से धीरे-धीरे महल खड़े हो जाते हैं।

इसी तरह अखबार खरीदना सरासर फिजूलखर्ची है। कोई भला आदमी, अपना पड़ोसी, कभी अखबार देने से इनकार नहीं कर सकता। इनकार करना तो दरकिनार उसे खूशी ही होगी। यही खयाल करेगा कि डाक्टर साहब अपने अखबार के अलावा मेरा अखबार मंगा रहे हैं। कोई खास बात देखनी होगी। और फिर यह भी जरूरी नहीं कि सदा एक ही आदमी के यहाँ से अखबार लो, फेर-बदल कर के मंगाओ, कोई भाँप भी नहीं सकेगा। और आप समझते हैं उसमें कितनी बचत होती है? पाँच रुपया महीना यानी साठ रुपया साल यानी दस साल में छः सौ रुपया यानी पचास साल में तीन हजार रुपया। तीन हजार! कुछ रकम

कहलाती है तीन हजार !....मोटे रूप में, यहो सेन्स लाँ आफ नम्बर्स है ।

इतना ही नहीं, पैसा पैदा करने की और भी अक्सोर विधियाँ हैं ।

आपको पता होगा कि विश्वविद्यालय के सम्पूर्ण विज्ञान-विभाग के वही प्रधान हैं । प्रधान की हैसियत से प्रयोगशाला की जरूरत की सभी चीजों की खरीद उन्होंने अपने हाथ में ले ली है । जरूरी भी था ताकि कोई धोखाधड़ी न हो और अच्छी से अच्छी चीज कम से कम दामों में मिले । क्लर्क लोगों के हाथ में यह जिम्मेदारी दे दो तो वह अकसर व्यापारियों से मिल जाते हैं और विभाग को बड़ी क्षति उठानी पड़ती है । जब से श्री मन्मथ सेन ने यह काम अपने हाथ में लिया है, विभाग को कोई क्षति नहीं उठानी पड़ती क्योंकि, आप ही कहिए, मन्मथ बाबू क्या विभाग से बाहर हैं ? साल का पाँच हजार भी रख लीजिए (जो कि सच पूछिए तो दाल में नमक के बराबर है) तो पचीस साल में सवा लाख की जायदाद खड़ी हो जाती है, देखते-देखते, और हड़ लगे न फिटकरी ।

बीकर हजारों आये और टूट-फूट गये । टेस्ट ट्यूब हजारों आये और टूट-फूट गये । यह नमक और वह रसायन, सब आये और जलकर राख हो गये या गैस बनकर हवा में उड़ गये । खुर्दबीनें आयीं, बिजली के बैलेंस आये, सब-सब आये और अपना काम-धाम करके किनारे लगे । खाद की गाड़ियाँ आयीं, लाल-पीले गुलाब लगे और चार दिन बहार दिखलाकर झड़ गये । मगर उन सबके निचोड़ से डेढ़-दो लाख की जो जायदाद खड़ी हुई वह हमेशा कायम रहेगी ।

और जो यह कहिये कि श्री मन्मथ सेन ने यह सब जायदाद अपने लिए इकट्ठा की है तो वह भी गलत । श्री मन्मथ सेन के है कौन जिसके लिए जायदाद खड़ी करने की हविस उन्हें हो ? यह तो जो कुछ उन्होंने इकट्ठा किया है सब देश की सेवा के लिए ।

अविश्वासी लोग बोले—सब यही कहते हैं । यह हिन्दुस्तान है, यहाँ जितनी लूट-खसोट होती है सब देश की सेवा के नाम पर—

मगर उनके भी मुँह बन्द हो गए जब एक दिन उन्होंने अखबार में पढ़ा कि श्री मन्मथ सेन ने इंडियन स्टैटिस्टिकल ब्यूरो नामक एक संस्था को डेढ़ लाख रुपये दान किये । लेकिन उसके अगले ही रोज एक और खबर छपी थी जिस पर लोगों का ध्यान शायद नहीं गया—इंडियन स्टैटिस्टिकल ब्यूरो के वार्षिक अधिवेशन में डाक्टर मन्मथ सेन उसके आजीवन सभापति चुने गये....

....और इसी छोटी-सी खबर में श्री मन्मथ सेन का गणित का चमत्कार छिपा हुआ है । बहुत स्थूल रूप में, वह गणित कुछ इस प्रकार का है—डेढ़ लाख की रकम फिक्स्ड डिपॉजिट में रख दी जाय तो चार प्रतिशत की दर से वह साल में छः हजार रुपया सूद कमायेगी । लेकिन जब वही रकम इंडियन स्टैटिस्टिकल ब्यूरो में दान दे दी जाती है और वह संस्था आपको अपना आजीवन सभापति चुन लेती है तो आपको एक हजार रुपया मासिक आनरेरियम के रूप में मिलने लगता है । यानी एक का दो । और दुनिया भर में यश जो मिला, सो सब घलुए में । सेन्स लाँ आफ नम्बर्स का यही तो मजा है ।

सब जानते हैं कि दुनिया में यश कोई छोटी चीज नहीं है । इसी यश के लिये आदमी एवरेस्ट की चोटी पर चढ़ता है, पनडुब्बा बनकर अतलान्तक की गहराई नापता है, कलम घसीटता है, पागल की तरह पचास मील तक दौड़ता चला जाता है, क्या नहीं करता, कोन-सा जोखिम नहीं उठाता मगर कठोर गणितज्ञ श्री मन्मथ सेन के लिए कोरा यश बहुत महत्व नहीं रखता । वह तो कविता है । गणित है उस यश को और भी द्रव्योपार्जन का साधन बनाना—और वे साधन अनन्त हैं, उतने ही जितनी कि भगवान् की महिमा । इसलिए अब उस प्रकरण को यहीं समाप्त करता हूँ ।

कहने को अब बस इतना ही शेष है कि उत्पला के रूप में पत्नी भी उन्हें अपने अनुरूप ही मिली है । संस्थाओं को जन्म देकर फिर स्वयं उनसे उपकृत होना, इस युग की अपनी विशेषता है । उत्पला को भी यह बात

समझने में ज्यादा देर नहीं लगी और अब उसने भी रस-भारती के नाम से एक संस्था खोल ली है ।

परिणय-सूत्र में बँधे हुए दोनों गणितज्ञों का जीवन मंद-मंथर गति से बहता चला जा रहा है । पता नहीं दोनों ने एक दूसरे से जो कुछ पाने के लिए इस आत्मीय संबंध को स्वीकार किया था, उसमें से किसको कितना क्या मिला या नहीं मिला, मगर हाँ, ऊपर से देखने पर दोनों ही प्रसन्न दिखाई देते हैं । किसका पलड़ा भारी रहा, इससे किसी को क्या प्रयोजन, यों कौन नहीं जानता कि जहाँ एक बुढ़े आदमी का ब्याह एक जवान औरत से होता है वहाँ सदा जवान औरत का ही पलड़ा भारी रहता है, पति फिर चाहे वृहस्पति का अवतार ही क्यों न हो ।

पलड़ा उत्पला का ही भारी था । पहले कभी हाथ खाली भी हो जाता था, अब किसी चीज की कमी न थी । श्री मन्मथ सेन और सब जगह पाई-पाई दाँत से पकड़ते थे मगर उत्पला के लिए उनकी थैली का मुँह हमेशा खुला रहता था । बुढ़ापे में जवान स्त्री घर में लाये थे, कुछ तो तावान देंगे उसका, कहीं तो कमी पूरी होगी ।

और उत्पला भी इस बात को समझती थी । लिहाजा उसकी फरमाइशों का कहीं अंत न था, आज यह तो कल वह । हर रोज किसी न किसी जोहरी के यहाँ पहुँची हुई है ।....कि जैसे फसल खेत में कटकर पड़ी हो और आसमान में काली-काली घटाएँ छायी हों और हर आदमी इसी कोशिश में लगा हो कि कैसे जल्दी-से-जल्दी सब अनाज उठाकर अपनी बखार में पहुँचा दे । कौन जाने कब गड़बड़ाकर बरसने लगे, आँधी-तूफान का क्या ठिकाना !

कहो बेटा, कब आये ?....दुर....दुर....  
 ....ससुरा कहाँ से घुस आया....पड़ोस के  
 वकील साहब का कुत्ता है....तुम्हीं बताओ  
 रज्जू, ऐसा कुत्ता पालने से क्या फायदा ?  
 साल भर तो इसको खुजली हुई रहती है ।  
 न दवा न दरपन । कहने को कुत्ता पाल  
 रखा है, मगर खाने को क्या देते हैं उसे ?  
 दाल-भात । ही ही ही, दाल भात ! इतना  
 तो मैं गंवार, बिनपट्टी भी जानूँ कि कुत्ता दाल-  
 भात नहीं खाता । मगर इन वकील साहब को  
 कौन समझाये, इनकी अकल में तो पत्थर पड़  
 गया है । क्या करे बेचारा कुत्ता, दिन भर यहाँ-  
 वहाँ सूँघता फिरता है ।....और मेरा सारा  
 दिन उसको दुरदुराते बीतता है....सब अपना  
 अपना भाग्य है....कहने को दो दो बहुएँ हैं  
 मगर कहाँ के बेटे कहाँ की बहुएँ....बुढ़ापे में  
 इतना भी सुख नहीं कि दोनों जून बनी-बनायी  
 दाल-रोटी मिल जाय । अपने हाथ से ठोकूँ तो  
 खाऊँ । भगवान् जाने पूरब जनम में कौन पाप  
 किया था....मौत भी नहीं पूछती मुझको ।

एक एक करके सभी चले गये, बस मेरा बुलूबा न आया....अरे अरे, देखो तो किस ठाठ से बढ़ा चला आता है ।....भाग यहाँ से, भाग, नहीं ऐसा डंडा मारूँगी कि टंगड़ी टूट जायेगी....हे भगवान्, तू भी कितना निर्दयी है ! तू मुझे उठा क्यों नहीं लेता अब ? अब और क्या देखने को बाकी है....पहाड़-जैसा यह घर, इसमें भूत रहते हैं । मैं भी तो एक भूत हूँ । तुम्हें मुझसे डर नहीं लगता ? सब मुझसे कहते हैं कि तू इस घर को खा गयी ! तुम्हें मुझसे डर नहीं लगता ?

....हड़े हड़े....यह चार ठो बड़ियाँ डालो हैं सूखने को....नाक में दम कर रखा है कौवों ने... कितने ठीठ हैं मुए....तुम्हारी अम्मा कैसी हैं रज्जू ?....बेटी-बेटे सब मुझको छोड़कर चले गये । कोई भाँकने भी नहीं आता, बुढ़िया जीती है कि मर गयी....लीला, विमला, रनियाँ, हैं सब इसी शहर में, पर कौन आता है, किसे पड़ी है....मैं तो मर चुकी, उनके लेखे....उधर बाप की आँख मुँदी इधर लड़के भी सब अपनी राह लगे....कोई किसी का सगा नहीं होता....हाँ हाँ, अपने पेट के जाये भी आँखें फेर लेते हैं । दुनिया बड़ी बुरी है । यहाँ सब अपने मतलब के यार होते हैं....जब तक कुछ गहने बचे थे मेरे पास, सब मेरे फेरे देते थे.... मगर अब क्या ?....अब तो सब को पता है कि बुढ़िया खुक्ख हो गयी.... कहाँ इस घर में कभी इतना हल्ला होता था....तुमने भी तो देखा था.... कान पड़ी आवाज न सुनायी देती थी....कहाँ अब....घर जैसे भाँय भाँय करता है ...बड़ा डर लगता है । रात को नींद नहीं आती । पर मैं क्या करूँ कहाँ जाऊँ । मेरा तो यही घर है, मुझे और कहाँ ठाँव ? लो अब यह कौन आया ? बिबिया । क्या है बिबिया ?....मुंसरीम साहब की बहू जी ने सूप मंगवाया है ? कह दीजो, सूप टूट गया है....तुम्हीं बताओ, रज्जू, सूप भी मैं मंगनी देने लगूँ तब तो हो गया....पूछो जिस घर में सूप-चलनी नहीं, वह भी कोई घर है ?....बुढ़ापे में दिन भर यही सब करते बीतता है....कहा तो, एक बूंद पानी देने वाला भी कोई नहीं है.... आदमी इसी दिन के लिये गिरिस्ती का सब टंटा-बखेड़ा करता है....सब

घोखा है....सौरी में हो मैंने सब का टेंटुआ क्यों न दबा दिया ! यही न कि सब कहते बड़ी हत्यारिन माँ है । मेरे ठोंगे से ! हत्यारे माँ को माँ समझते कब हैं ? कलिकवा कहता है—सीधे से रह बुढ़िया, नहीं जूते से पीटूंगा ! हे भगवान् अपनी ही माँ को । इसी के लिये नौ महीने पेट में रक्खा था ! हरामी का पिल्ला । जोभ भो कट कर न गिर गयी नासपोटे की !....अच्छा हुआ अपनी उस छत्तीसी छोकरिया को लेकर चला गया नहीं मैं उस चंडालिन का मुँह भौंम देती ! कैसा छाती पर चढकर रार करने आती थी । मैं क्या किसी का दिया खाती हूँ, किसी की जमींदारी में बसी हूँ....बिल रे....बिल-बिल....अब यह कलमुँही बिल्ली आ मरी.... दिन भर दिन भर यही दुर दुर बिल बिल....सब अपने भाग की बात है भैया ! जो पड़ेगी, भेलूंगी । पिछले जनम में जो पाप किया है, उसका भोग दण्ड और कौन भेलेगा । चाहे हँसकर भेलो चाहे रोकर भेलो, भेलना तो पड़ेगा । अब मेरा कौन है इस दुनिया मे....बस यह घर मेरा है....इंट पत्थर है तो क्या, छाँह तो है....यह घर न होता तो आज सड़क पर बैठी होती.... मैंने अपने खून-पसीने से बनवाया था इसको । तुम्हारे चाचा की इतनी आमदनी थोड़े ही थी कि घर बनवा पाते । ऊपर से शराब-कबाब का चस्का । मैं ही जानती हूँ कैसे कैसे मैंने रुपया जोड़ा, कैसे कैसे भूठ बोली, कैसे सब तरफ़ काट-कपट की, एक-एक कौड़ी दाँत से पकड़ो, तब यह घर बना । ऐसे ही नहीं बन गया । तभी तो मरते-मरते यह घर मेरे नाम लिख गए तुम्हारे चाचा, नहीं मैं आज इसमें बैठी होती ? अरे, राम भजो, सबों का बस चले तो मेरा खून पी जायें ।....सब कहते हैं तूने हमको कौड़ी-कौड़ी के लिए तरसाया, धेले की मलाई बरफ़ खाने पर से तूने हमको पीटा, तू जल्लाद है, तेरे कारन हम घर से भागे-भागे फिरते थे, तेरे कारन हमको चोरी करनी पड़ी, तेरी त्योरियाँ देखते-देखते, तेरी गालियाँ सुनते-सुनते, तेरी मार खाते-खाते हम लड़कपन में ही बुढ़े हो गए, हमने कभी कोई खुशी नहीं जानी....

सब भूठ....सब भूठ....सब भूठ....मैं बस इतना जानती हूँ कि

यह घर आसानी से नहीं बना....रोग-दोख पर किसी का क्या बस । लल्लू को इसी बोच तपेदिक हो गया । छुतही तो बीमारी लल्लू से मोहन को लग गयी । कितना मना करती थी मोहन को कि भैया के पास न जाया कर । मगर कौन सुनता है । आखिर दोनों को भगवान् ने उठा लिया । उसमें अपना क्या जोर । जिसने दिया था उसी ने वापस बुला लिया । रोकर चुप हो गयी । और करती भी क्या ।....क्या नहीं भेला मैंने क्या नहीं मचा । बस यही समझो बेटा कि मैंने छाती पत्थर की कर ली तब कहीं यह घर खड़ा हुआ । ऐसा न करती तो यह घर खड़ा होता भी नहीं, यह भी समझ लो । कोई खजाना नहीं गड़ा था । बिना तकलीफ सहे, बिना झुड़ी जलाये यह सब काम नहीं होते....

....मगर कौन समझाये यह बात इन लोंडों को, न कुछ जानें न समझें । लेकिन तभी से सबों ने मुझसे दुश्मनी बाँध रखी हैं । कहते हैं—लल्लू भैया को, मोहन भैया को मारने वाली तू ही है । तूने ही उनको मारा है । तूने उनका इलाज ठीक से नहीं किया । तूने उनके खाने में कटौती की, तुझे अपने घर की पड़ो था । तेरा दिल पत्थर का है । तो रह तू ही, अपने इस ईट-पत्थर के ढेर में । हमें तो इसमें आवाजें सुनायी पड़ती हैं....

हूँ : मुझे तो कोई आवाज नहीं सुनायी पड़ती । बस यही सूनापन है । यही चीज रात को और बढ़ जाती है । घर और भी भायँ भायँ करने लगता है । तब मुझको डर लगता है, बहुत डर लगता है । रात की रात मुझे नींद नहीं आती । आँख बन्द करते डर लगता है । न जाने कैसी कैसी शकलें दिखायी देती हैं । एक रात जो मैं ठीक से सो पायी होऊँ । मैं तो.... मैं तो पागल हो जाऊँगी । भाड़ में जायँ ऐसे बेटो-बेटे, भाड़ में जाय यह घर । कौन मुझे छाती पर बाँधकर ले जाना है । इन्हीं लोगों के लिए तो बनवाया था....और कुछ न सही, अपना घर तो रहेगा, सर पर आड़ तो रहेगी, यही सोच कर....अब कोई नहीं रहना चाहता इसमें, न रहे । ढह जाये । आग लग जाये ।....सब झूठ है कि लल्लू मोहन....कोई किसी को नहीं मार सकता । मारने-जिलाने वाला तो भगवान् है । तुम्हीं सोचो, कभी

ऐसा हो सकता है ? वो क्या मेरे बच्चे नहीं थे ? वो भी तो मेरी ही कोख से जन्मे थे । उनको भी तो मैंने ही पाल-पोसकर बड़ा किया था । उनके इलाज में कुछ उठा नहीं रक्खा गया । जोने-मरने की बात और है । हाँ, पहाड़ हमने नहीं भेजा....उतनी हैसियत न थी....इसमें क्या छिपाना है ?.... और पहाड़ भेजने से उनकी जान बच जाती, यह सोचना भी भूल है । पचास हकीम-डाक्टर घेरे बैठे रहते हैं और पंखी उड़ जाता है, उसकी बात क्या करते हो ! जिसका जितने दिन आबदाना लिखा होता है, उससे एक पल বেশी नहीं हो सकता । मगर कौन समझाए हरामजादों को । उनको यही शिकायत है कि—पता नहीं क्या शिकायत है । मैं तो बस इतना जानती हूँ कि पत्थर का कलेजा किये बगैर पत्थर का घर नहीं बन सकता । गरोब का घर नहीं बन सकता । हम लोग कहीं के धन्नासेठ नहीं थे । काट-कपट करके ही तो घर बना । इसमें शर्म कैसी ?....

....ओफ, कितना धुआँ आ रहा है बगल के घर से । दिन-रात का यही किस्सा है । एक पड़ोसी के यहाँ से धुआँ आता है, एक के यहाँ से कुत्ता । रात को मुझे नींद नहीं आती, डर लगता है । आकर रहें न कमीने । मैं ही कहीं और चली जाती हूँ । चिढ़ तो उनको मुझसे है । ईंट-पत्थर में थोड़े हो कोई आसेब है । रहें । उनका घर है । उन्हीं के लिए बना था । मेरा क्या, सड़क पर पड़ रहूँगी । लोगों की शकलें तो देखूँगी, आते-जाते । डर तो न लगेगा । नींद तो आ जायेगी....

जब से हमारे यहाँ भी 'क्वालिटी' खुल गया है, एक खास नस्ल और कौम के लोगों की तलाश में दर-ब-दर भटकना नहीं पड़ता । सभी से इसी जगह मुलाकात हो जाती है । और फिर सबका अपना वक्त मुकर्रर है, अपनी जगह मुकर्रर है । मैंने सोचा कि हिन्दोस्तानी समाज के इस मक्खन को जो मथने से ऊपर आ गया है, देखने का मौका इससे अच्छा कहाँ मिलेगा ।

देहातों में जो इंसानियत रहती है या जब वहाँ गुजारा नहीं होता तो भागकर कलकत्ता बंबई की चालों और बस्तियों में रहती है और दिन-रात पसीना बहाकर किसी तरह दोनों जून की रोटी का सामान करती है, उसे कोई देखे भी कहाँ और देखकर होगा भी क्या । उनके बारे में तो हमने भी सुन रखा है कि वह निरे जाहिल होते हैं बल्कि यह भी कह सकते हैं कि वह इंसान की शकल में जानवर होते हैं जिन्हें जिन्दगी की खूबसूरत चीजों का पता भी नहीं होता,

मधुसूदन चरण

उनके लिए अपनी दोनों जून की रोटो हो बहुत है, जब तक मिलती जाती है। उनको देखकर न तो किसी कौम की तरक्की का पता चल सकता है और न उसकी दिमागी और छहानी ताकत का। वह नाँद में मुँह डालकर अपना पेट भर लिया करें, यही बहुत है। उन्हें तो आदमी कहना भी एक तरह से अपनी कौम का अपमान करना है। वह तो खाद है जो अच्छी तरह क्यारियो में बिछा दी जाती है ताकि उनमें एकसे एक खूबसूरत और खुशबूदार गुलाब और पैन्जी और क्रिसैन्थेमम उगाये जा सकें। यह ठीक है कि खाद न हो तो ये फूल कहाँ से पैदा हों मगर उससे क्या, जिक्र तो जब होता है, फूलों का ही होता है। और चूँकि 'क्वालिटी' खुल जाने से अब सारे फूल दिलकश गुलदानों में सजे हुए एक ही जगह पर मिल जाते हैं, इसलिए मैंने सोचा कि जरा इन क्यारियों की सैर की जाय और जो एक से एक दिलफरेब फूल मुझे नजर आये, उनमें से एक की बानगी आपके सामने पेश करता हूँ।

लोजिए मदन कपूर साहब से मिलिए। जी, उनके साथ जो खातून नजर आ रही हैं, उनकी बीवी नहीं हैं। उनका नाम रेखा मालवीय है। बीवी को साथ लेकर घूमने की गलती मदन कपूर साहब नहीं करते। बीवी घर की जीनत है। उसके दिल बहलाव के लिए मदन कपूर साहब कभी कभी उसके साथ मैटिनी सिनेमा देखने चले जाते हैं, बाकी सब जगह साथ आने-जाने के लिए यही रेखा मालवीय हैं। रेखा मालवीय के साथ उनका क्या संबंध है, इसे दूसरा कोई तो क्या जानेगा, खुद उन्हीं दोनों को ठीक से नहीं मालूम सिवाय इसके कि दोनों हम-सफर हैं, साथी हैं और साथ मिलकर दुनिया को फतह करने निकले हैं। दोनों की जिन्दगी के बड़े बड़े सपने हैं और दोनों को इस बात का पता है कि अकेले वह इस काम को नहीं कर सकते। ठीक बात है, औरत जात अकेली। इस दुनिया में क्या कर सकती है, न कहीं जा सकती है न आ सकती है, जहाँ घर से कदम निकाला नहीं कि रुसवाई खड़ी हुई है, जितने मुँह उतनी बातें। और काम तो जहाँ का तहाँ घरा रह गया हर आदमी किसी दूसरी ही

शतरंज की बिसात बिछाने लगा। अकेले तो वह वाकई सिफर है मगर जो किसी आदमी का साथ मिल जाये तो फिर लाख दस लाख करोड़ दस करोड़ जो जो चाहे बना लो। बस साथ मिलना चाहिए उसे किसी आदमी का, फिर तो दुनिया को फतह करना बच्चों का खेल है।

मदन कपूर भी इस बात को समझता है कि अकेले उसे दुनिया में कौन पूछने वाला है, उसकी तरह न जाने कितने जूतियाँ चटखाते फिरते हैं, एक से एक चालाक, एक से एक होशियार। उसमें ऐसा कौन सा सुर्खाब का पर लगा है कि जहाँ दूसरे धूल फाँकते नजर आते हैं वहाँ उसे मोती चुगने को मिल जायेंगे। इस मेले में कौन किसे पूछता है जब तक कि आपके पास अपनी कोई खास चीज न हो जो बरबस दूसरों का ध्यान अपनी तरफ खींच ले। औरत ऐसी ही चीज है। औरत एक जादू है। औरत एक करिश्मा है। औरत एक चारा है जिसे अपनी बंसी में लगा लो और फिर अच्छी से अच्छी मछली का शिकार करो। इस चारे को चुगने न आये, ऐसी मछली अभी पैदा नहीं हुई।

आजकल अप्रैल के दिन हैं और अच्छी खासी गर्मी पड़ने लगी है मगर मदन कपूर साहब बाकायदा गरम सूट डटाये हुए हैं क्योंकि उन्हें दिल्ली के इस नये फैशन का हाल मालूम है। वुस्टेंड का ग्रे पतलून और उस पर क्रोम रंग के ट्वीड का कोट, स्टीफ कालर और उसमें गहरे लाल रंग की टाई जो ग्राम रिवाज से बहुत मेल नहीं खाती मगर उनके गोरे रंग पर बहुत ज़ेब देती है और मदन कपूर साहब को इस बात का पता है। पैरों में मोटे क्रैप के जूते जो किवी के रौगन से ऐसे चमक रहे हैं कि उसमें उनके जबड़ों का हिलना दिखायी दे रहा है।

रेखा मालवीय भी किसी मतलब में उनसे हेठो नहीं हैं। फालसई रंग की साड़ी और तंग चोली। पैरों में नफीस सलीमशाही जूतियाँ। होठों पर गहरा सुर्ख लिपस्टिक। चेहरे पर गाँजे की एक निहायत बारीक फ्लि-मिली चादर। अजंताई अंदाज का जूड़ा। और बाहर आते आते निहायत सुबुक हाथों से जो एक बार सुरमे की सलाई आँखों में फेर ली गई थी और

खुशबुआँ का एक बादल जो अपनी फुहारें छोड़ गया था—उस सबसे बस यही समझिए कि वह हुस्न की एक नंगी तलवार थी जो बाज़ार में चमकती फिर रही थी और उसकी ज़द में आना गोया घायल होकर गिर जाना था ।

उनके बैठते ही बैरा लपककर आया । और उनके कुछ भी बोलने के पहले पेस्ट्रियों का तश्त उनके सामने था । बैरे भी जानते हैं कि इन मेम, साहब को पेस्ट्रियाँ बहुत पसंद हैं । खासकर चाकलेट की ।

रेखा ने एक चाकलेट पेस्ट्री उठाकर अपनी तश्तरी में रखी और छोटो-से काँटे से बहुत तकलुफ के साथ जरा सा टुकड़ा लेकर उसे चुबलाते हुए हाल में नजर दौड़ाई ।

मदन ने पूछा—क्या हुआ ? कल चतुर्वेदी साहब के यहाँ गयी थीं ?

रेखा ने कहा—गयी तो थी मगर वह मिले नहीं ।

मदन ने पूछा—कहीं बाहर गये हुए हैं ?

रेखा ने दूसरा टुकड़ा उठाकर मुँह में डालते हुए कहा—यही तो मालूम हुआ, शायद सहारनपुर चले जाना पड़ा, उनकी लड़की की तबीयत खराब है ।

मदन ने पूछा—और केवलकृष्ण जी के यहाँ ?

रेखा ने कहा—हाँ, उनसे मुलाकात हुई । कहते थे काम हो जायगा । बोले कि दरखास्तें तो बहुतों की आकर पड़ी हैं, जो अब तक सप्लाई का काम बराबर करते आ रहे थे, मगर इस मर्तबा मैं आपको काम दूँगा । मैं नये लोगों को चान्स देना पसंद करता हूँ ।

मदन ने हल्के से रेखा को आँख मारी, यह बतलाने के लिए कि यह सब तुम्हारी बरकत है वर्ना वह पुट्टे पर हाथ तो रखने न देता, बड़ा आया नये लोगों को चान्स देने वाला !

रेखा ने कहा—मगर वह पूछ रहे थे कि आपका फर्म कितना पुराना है, उसने पहले कोई काम किया है या नहीं, अगर कुछ रेफरेंसेज हों तो अगली बार लेती आइएगा । इतना बड़ा काम मैं ऐसे कैसे दे दूँ ।

मदन समझ गया कि घाघ आदमी है—सब रेखा को अपने चंगुल में

लेने के बहाने हैं। बोला—उसकी कोई बात नहीं। जितने रेफरेंस चाहोगी दे दूंगा। कौन भकुआ चेक करने जाता है।....मगर आदमी सुन है खराब है, जरा बचकर रहना ...

रेखा ने बड़ी सादगी के साथ कहा, जैसे बालों की एक छोटी-सी लट भ्रांख पर से हटा रही हो—वह सब मैं देख लूंगी। उसकी कोई बात नहीं। कागजात सब तुम ठीक रखना वर्ना बाद में....

मदन ने कहा—उसकी तुम फिक्र न करो।....और अपना मोरक्को लेदर का पोर्टफोलियो खोला जिसमें एक दो नहीं मुबलिंग सत्ताइस फर्मी के लेटरहेड थे, जिनका अस्तित्व उस पोर्टफोलियो के बाहर कहीं नहीं था यानी कि अगर वह कहीं थे तो उन्हीं लेटरहेडों में। ईस्टर्न ट्रेडर्स....दि मैमथ ट्रेडिंग कारपोरेशन....ओरियेंटल एलेक्ट्रानिक्स....दि अशोका क्यूरियो मार्ट....गुलमर्ग ट्रेवल एजेंसी....द पुअरमेन्स वेलफेयर लीग....त्रिपुरी मिनरल्स....मुर्शिदाबाद सिल्क हाउस....जयपुर आइवरी हाउस....द चीनांशुक....और....और....

एक से एक दबीज कागज पर निहायत खूबसूरत कलकत्ते और बंबई के छपे हुए लेटरहेड, कोई लाल तो कोई काला तो कोई हरा तो कोई दुरगा.... किसी का हेड आफिस कलकत्ता तो ब्रांच लखनऊ और किसी का हेड-आफिस लखनऊ तो ब्रांच कलकत्ता या कोई तीसरा ही शहर....सबमें तार के पते और फोन के नंबर....किसी किसी में बोर्ड आफ डाइरेक्टर्स के नाम भी....गरज कि यही वो ताश के पत्ते हैं जिन्हें फेंटने से कभी प्लाश और कभी इक्के और कभी बादशाह की ट्रेल निकल आती है। खेल जोखिम का है यानी कि ऊँचे दाँव का है, कभी दाँव गलत पड़ने पर जेल का भी मुँह देखना पड़ सकता है जैसा कि यहाँ आने के पहले एक बार बंबई में हो चुका है मगर उससे क्या, यह तो मर्दों का खेल है। खेल सब ही खेलते हैं, कोई पकड़ा जाता है कोई नहीं पकड़ा जाता, किसी को चार सौ बीस में सजा मिलती है और किसी को इसके सिले में नयी तरक्की मिलती है। इसलिए मदन को किसी बात का डर नहीं है, हाँ जरा

दामन बचाकर काम करना चाहिए और सो वह करता है ।

मदन ने पूछा—कुछ पियोगी ?

रेखा ने कहा—नहीं आज तो चाय ही आने।दो....

चाय आयी और दोनों धारे धारे मजा ले लेकर चाय पीने लगे —

बिजनेस की बातचीत अब बंद हो गयी और इधर-उधर की दूसरी हल्की-फुल्की बातें होने लगीं । काम दोनों ने अपने अपने समझ लिये थे ।

अगले दिन सबेरे मदन ने कई जाली रेफरेन्स रेखा के यहाँ पहुँचा दिये । उन्हें लेकर रेखा केवलकृष्ण साहब के यहाँ गयी और काम ले आयी । मगर यह तो अभी पहली और एकदम मामूली मंजिल थी । चीजें अगर सब सप्लाई ही करनी पड़ी तो फिर काम क्या बना ? उसमें क्या बचत रखी है । और इतनी सप्लाई के लिए पैसा किसके पास लगाने को रखा है । इस तरह तो कुछ भी मजा नहीं आयेगा । मजा तो तब है जब उन्ही के उस्तरे से उनको मूड़ा जाय, और जैसे भी हो पैसा पेशगी लिया जाय—इसका कायदा नहीं है तो नया कायदा बने या अगर कायदा नहीं बनाना चाहते तो न बनाइए, हमें उससे गरज नहीं है, हमारे लिए तो खास रियायत करनी ही होगी—और फिर सड़ी-गली, आघी-तिहाई सप्लाई करके पैसे दूनोंदून लिये जायें तब तो कुछ बात हुई । यही तो असल मार्का है । इसी की तो जुगत बैठानी पड़ती है । इसीलिए उल्लू चुनते वक्त मदन और रेखा दोनों की नजर नौजवान अफसरों पर रहती है । काम तो उमी के यहाँ सधेगा जिस पर रूप और जोबन का जादू चल सकता हो, बुढ़ा खूसट लेकर हम क्या करेंगे ।

रात के दस बजे थे जब चपरासी ने आकर उन्हें कार्ड दिया—रेखा मालवीय....इस वक्त ? यह कौन सा वक्त है । एक बार जी मे आया कि चपरासी से कह दें—मिस साहब को सबेरे आने के लिए बोलो....लेकिन एक स्त्री के प्रति ऐसी अशिष्टता उनसे न हो सकी और फिर जब वह स्त्री

इतनी सुंदर हो और....घर की स्त्री अपने मायके गयी हुई हो और अकेला-पन जी पर इतना भारी हो रहा हो। मगर उस वक्त कपड़े बदलने की उनकी हिम्मत नहीं हुई और उन्हीं रात के कपड़ों में उन्होंने मिलने का निश्चय किया।

रेखा चारों तरफ चाँदनी-सी बिखरती हुई कमरे में दाखिल हुई।

—आप बड़ी जल्दी सोने चले जाते हैं? अभी तो शाम हुई है।

—बात यह है कि मैं घर में अकेला हूँ, जी ऊबने लगता है....

न जाने क्यों रेखा को इसमें कुछ अनुकूल संकेत मिला। बोली—मैं जानती थी।....आपने तो रात के कपड़े पहन रखे हैं वर्ना....

—मगर इस वक्त आपको आने की ऐसी क्या जरूरत आ पड़ी?

—कोई खास बात न थी। बैठे बैठे मुझे खयाल आया कि चलकर आपसे दो-चार बातें करूँ। बात यह है कि मेरा भी कोई दोस्त नहीं है। दिन भर तो यही पेट का धंधा रहता है। मुझे अच्छा थोड़े ही लगता है पर काम न करूँ तो गुजारा कैसे हो। घर में बस बूढ़ा माँ है, उसी के लिए सब करना पड़ता है वर्ना मेरा क्या है, मैं तो शादी भी कर सकती थी। लेकिन फिर माँ का क्या होगा? उसके लिए तो बेटो-बेटा जो कुछ हूँ मैं ही हूँ। मुझसे बड़ा एक भाई था, एयर फोर्स में, जाता रहा। जी हाँ प्लेन क्रैश हो गया... पिता की छाया तो बहुत बचपन में ही मेरे सिर से उठ गयी थी....तब मैं मुश्किल से तेरह चौदह की रही हूँगी....

रेखा की बातों ने केवलकृष्ण के मन में करुणा का संचार किया। बोले—आपके पिता तो किसी ऊँचे ओहदे पर रहे होंगे?

रेखा बोली—जी हाँ, वह फाइनेन्स में डिप्टी सेक्रेटरी थे। मिस्टर चन्द्रबदन मालवीय का नाम आपने सुना होगा।

केवलकृष्ण ने यह नाम नहीं सुना था लेकिन उससे क्या। बोले—जी हाँ, नाम तो मैंने सुना है।

रेखा ने कहा—मगर यह बात आपने न सुनी होगी कि उनकी सारी जमा-जथा उस साल कलकत्ता बैंक में डूब गयी थी। उसमें तो हम लोग

बरबाद हो गये ।....और प्राविडेण्ड फण्ड खाकर कोई कितने दिन चल सकता है....

केवलकृष्ण ने कहा—मैं ऐसी महिलाओं की बड़ी इज्जत करता हूँ जो अपनी जीविका खुद कमाती हैं....

रेखा ने कहा—मगर मेहता साहब, आप जैसे लोग कितने हैं ? सौ में पंचानबे लोग तो अभी ऐसे ही हैं जो औरतों को गुड़िया बनाकर घर के भीतर बंद रखना चाहते हैं और जो किसी लड़की ने घर के बाहर पैर निकालने की हिम्मत की तो समझिए उसकी शामत आयी, फिर कौन सी बात है जो उसके बारे में नहीं कही जाती .. और लोग जो शक करते हैं वह भी अपनी जगह पर ठीक ही करते हैं क्योंकि अपने काम के सिलसिले में अकसर लोग मुझे ऐसे ही मिलते हैं जो अकेली लड़की पाकर फौरन कुछ दूसरी ही स्कीमें बनाने लगते हैं ।

रात की इस एकान्त निस्तब्ध वेला में रेखा जैसी रूपसी को अपने कमरे में पाकर केवलकृष्ण का मन भी कुछ-कुछ डोलने लगा था मगर फिर तभी उसने अपनी दुखभरी जीवन-गाथा शुरू कर दी थी जिससे प्रेम की चिनगारी पर करुणा की राख पड़ गयी थी । मगर इस चीज को यों देखना ही भूल है । प्रेम अगर बीज है तो करुणा, ममता, जो भी नाम उसे चाहे दे लो, पानी की शीतल धारा है जो उस बीज को अंकुरित करती है । केवलकृष्ण के मन में इस समय प्रेम और करुणा का यही गंगा-जमुनी संगम हो रहा था और वह समझ नहीं पा रहे थे कि कौन-सा पानी गंगा का है और कौन-सा जमुना का । इसी बीच रेखा ने यह एक पत्थर और फेंक दिया, यही उन लोगों की बात जो किसी लड़की के अकेलेपन का बेजा फायदा उठाने की कोशिश करते हैं, और केवलकृष्ण समझ नहीं पाये कि यह उनको दूर रखने का संकेत है या पास बुलाने का आमंत्रण....और तभी उनको रेखा की आवाज सुनायी पड़ी—चलिए मेहता साहब, कहीं घूमने चला जाय, कमरे के अंदर अच्छा नहीं लग रहा है, देखिए तो बाहर कैसी सुभावनी चाँदनी छिटकी हुई है....

अब उनका दिमाग और भी चकरचिन्नी हो गया। मगर फिर यह जरा-सी बात उनकी समझ में आ गयी कि इस सब उधेड़बुन का वक्त यह नहीं है, एक संभ्रान्त स्त्री घूमने का प्रस्ताव कर रही है, बात बस इतनी सी है, खामखा उसमें पेंच पैदा करने से क्या फायदा....

गरुज मछली ने चारा चुग लिया....और गले में काँटा फंसने का एह-सास केवलकृष्ण को उस वक्त हुआ जब सप्लाइ की अवधि सर पर आ गयी और कार्यालय ने उनको सूचित किया कि ईस्टर्न ट्रेडर्स ने अभी एक किताब या एक नक्शा या एक टेस्ट ट्यूब सप्लाइ नहीं किया और अगले दिन उन्होंने रेखा से यह बात कही। मगर तब तक रेखा के संग उनका मेल-जोल इतना बढ़ गया था कि सीधी तरह बात कहना भी उनके लिए संभव नहीं हुआ और उन्होंने रेखा के पार्टनर कपूर पर बात डालते हुए कहा—अरे भइ, उनका क्या इरादा है? अब दिन हो कितने बचे और वह है कि कान में तेल डाले पड़े हैं! ऐसे कैसे होगा?

रेखा ने चकित होते हुए कहा—अच्छा, अभी सप्लाइ नहीं हुई? मैं आज ही कपूर साहब से पूछूंगी। बात यह है कि आर्डर लेने का काम मेरा है और उसको पूरा करने का काम उनका। मुझे कुछ भी नहीं मालूम। मैं आज ही उनसे पूछूंगी। यह तो बुरी बात है।

अब तो मेहता साहब के यहाँ रोज का ही उठना बैठना था। अगले दिन रेखा ने उनसे कहा—सुनिए जी, मैंने कल उनसे बात की थी। वह कहने लगे कि इस वक्त किसी वजह से हाथ थोड़ा तंग है, अगर हमें पेशगी....

केवलकृष्ण का अफमरी तेज प्रज्वलित हुआ और उन्होंने रेखा की बात काटते हुए कहा—पेशगी! कैसी बात करती हो?

रेखा ने निहायत भोलेपन के अंदाज में कहा—क्यों?

केवलकृष्ण ने कहा—सप्लाइ आपने कुछ की नहीं, पैसा आपको किस बात का दिया जाय? सरकार का काम है कि घर की खेती? और फेर

कायदा सबके लिए अलग-अलग तो बनाया नहीं जाता....

रेखा ने अपनी शर्बती आँखों का एक लार्ज पेग उँडेलते हुए कहा— कायदे इसीलिए तो बनाये जाते हैं मेहता साहब कि कभी-कभी उन्हें तोड़ा जा सके—और एक अजीब बाँकपन से मुस्करायी जो केवलकृष्ण को बहुत अच्छा मालूम हुआ मगर साथ ही उन्हें कुछ डर भी मालूम हुआ क्योंकि उस मुस्कराहट में एक खौफनाक छिटाई मिली हुई थी, कुछ यह बात कि अब करोगे नहीं तो जाओगे कहाँ ! मगर इतनी जल्दी हथियार डाल देने वाले आदमी वह न थे । बोले—मगर मैं ही तो सब कुछ नहीं हूँ रेखा, मेरे ऊपर और भी लोग हैं ।

रेखा ने कहा—हुआ करें । मैं तो इतना जानती हूँ कि आप अपने महकमे के बादशाह हैं !

औरत की ज़िद के आगे बड़े बड़े बादशाहों ने शिकस्त मान ली है, बेचारे केवलकृष्ण किस खेत की मूली हैं । लाचार बोले—वादा मैं नहीं करता, कोशिश करूँगा कि कोई सूरत निकल आये, मगर यह बड़ी ज्यादाती है ।

चारे में मुँह मारने के बाद मछली कब निकल पायी है । वह छटपटाती है, आसपास बहुत-सा पानी उछालती है मगर काँटा है कि खामोशी से गहरे उतरता चला जाता है....और फिर अनजाने हाथ बंसी को एक झटका देते हैं और मछली रेत पर पड़ी होती है ।

और रेखा ने मुस्कराते हुए कहा—मुहब्बत तो खुद सबसे बड़ी ज्यादाती है मेहता साहब !....

उस दिन मदन कपूर और रेखा मालवीय, यानी ईस्टर्न ट्रेडर्स, ने महज पेंस्ट्री और चाय पर कनाअत नहीं की बल्कि स्काच के दो-दो पेग चढ़ाये ।

उपसंहार—जिसे संहार भी कह सकते हैं ।

इसके बाद महीनों तक उनका बड़ा रंग रहा और ऐसा मालूम होता था कि अगर वह इसी तरह मंजिलें मारते रहे तो जल्दो ही एवरेस्ट की चोटी पर नजर आयेंगे ।....मगर फिर कोई छः सात महीने बाद मैंने एक रोज मदन को ऐसे हाल में देखा कि मैं यकीन ही न कर सका, यह वही मदन कपूर है—मैली-सी कमीज, झीली-झाली चिंगुडी-मिंगुडी टाई, बाल बिखरे हुए, चेहरे पर एक अजीब वहशत और परेशानी, एक कोने में बैठा था जैसे खुद अपने आपसे नजरें चुरा रहा हो, मणिहीन सर्प ।

मैंने पूछा—आज रेखा नहीं आयी....

मदन इस उदास अवसर के अनुकूल सिनेमाई हँसी हँसते हुए बाला—  
(पता नहीं उसने यह हँसी सिनेमा से चुराई या सिनेमा ने उससे चुराई ।  
बात कुछ भी हो मेरा मतलब आप समझ गए होंगे) रेखा अब नहीं आयेगी...

—क्यों, कुछ बिगाड़ हो गया क्या ?

—नहीं बिगाड़ क्यों होता, मैं कभी किसी का हिस्सा नहीं मारता,  
मेरा उसूल नहीं है ।....रेखा ने ब्याह कर लिया !

—ब्याह कर लिया ? किससे ?

—अजी वह एक अलग दास्तान है, फिर कभी सुनना....

—फिर भी....

—अरे क्या पूछते हो, उसी गहलौत के लड़के से जा फंसी....

—गहलौत ? गहलौत कौन ?

—कैसी बात करते हो । एक ही तो गहलौत है । उसके यहाँ गयी थी बिजनेस के सिलसिले में ( कह कर हल्के से एक आँख दबायी ) और उसी के बेटे से फंस गयी....

—मगर वह तो अभी लड़का-सा है....

—रेखा से कुछ भी नहीं तो चार बरस का छोटा होगा मगर अच्छे

हैकल जवान है । वैसी कोई बात नहीं, अरबी नस्ल का घोडा है....

और फिर थोड़ी देर की खामोशी के बाद — साला क्रिकेटर है न, छक्का मार गया ! मेरा तो सब बिजनेस ही ठप हो गया । बदज्जात अब खातिर मे ही नहीं लाती, देखती है तो मुँह फेर लेती है ।

कहानी की नसीहत • मछली देखकर चारा फेंकना चाहिए वरना कभी कभी अपनी बंसी भी हाथ से जाती रहती है ।

मेरो खिड़की के सामने से वह आदमी हर रोज निकलता है और दिन में कई कई बार निकलता है। कभी दूध का बर्तन लिये हुए जबकि शायद वह ग्वाले के यहाँ दूध दुहाने के लिए जाता है, कभी अपने पाँच बरस के बच्चे को सायकिल पर बिठाले हुए जबकि शायद वह उसे स्कूल पहुँचाने जाता है, और कभी अपने पूरे परिवार के सग जब कि वह लोग घूमने के लिए निकलते हैं।

मगर आपका कहना बिल्कुल दुरुस्त है कि इसमें ऐसी कौन सी बात है....तमाम लोग ऐसा ही करते हैं।

लेकिन क्या इसीलिए उस आदमी की तरफ से आँख मूंद लेनी चाहिए? क्या यह जरूरी है कि किसी आदमी के झुबे लटकते हों तभी हम उसकी बात सुनें? दो-चार आदमी उसके कदमों में कालीन बिछा रहे हों, दो-चार लोग चंवर डुला रहे हों....

ऐसी तो यहाँ कुछ भी बात नहीं है और भी हो कैसे सकती है क्योंकि यह आदमी कहीं

एक जमाना आदमी

का राजा नहीं है। यह तो एक निहायत मामूली पहाड़ी आदमी है जो एक सौ चालीस रुपये पर एक जगह नौकरी करता है। एक सौ चालीस रुपये उसकी बीवी और पाँच बच्चों और बुढ़ी माँ और विधवा बहन और भाई के दो बच्चों—जिनका निर्वाह अपनी सोतेली माँ के साथ नहीं हो सका—के लिए काफी नहीं होता। इसलिए नौ घण्टे की मेहनत के बाद उसे दो ट्यूशन करने होते हैं ताकि खर्च किसी तरह पूरा पड़े।

मगर फिर यही सवाल पैदा होता है कि इसमें ऐसी कौन-सी बात है। आज के दिन हिन्दुस्नान में कौन ऐसा है जो भूखा नहीं है और जिसका निर्वाह मजें में हो रहा है। सभी को किसी न किसी तरह लड़िया घसीटनी पड़ती है....

हाँ यह सब ठीक है, मगर फिर भी....

मैंने पहले इस आदमी में कोई दिलचस्पी न ली क्योंकि ऐसी कोई बात ही न थी। न जाने कितने नये किरायेदार आते-जाते रहते हैं और फिर अपने ही इतने भगड़े लगे रहते हैं। मान लीजिए यह सब कुछ भी न हो, तो भी तो मुँह देखकर ही बीड़ा दिया जाता है। कहीं किसी दफ्तर का मामूली बाबू, चार लोगों के सामने जिससे बात करने में भी मुझको झिझक मालूम हो ! लिहाजा जैसा कि मुनासिब था मैंने उसके आने का कोई नोटिस नहीं लिया।

एक रोज शाम कोई सात साढ़े सात का बक्त रहा होगा, जाड़े के दिन थे, मैंने उसे एक बहुत खूबसूरत लड़की के साथ आते देखा। रिश्ते पर आगे-आगे लड़की थी और पीछे-पीछे साइकिल पर आप। मेरा माथा ठनका। जरूर कुछ ढाल में काला है। मालूम होता है, हजरत किसी गरीब लड़की को फुसलाकर ले आये हैं। आज रात को जशन मनेंगे ! अब शरोफों के इस मुहल्ले में यह सब भी होगा ! कल ही इसके बारे में मकान मालिक को खत लिखना होगा। यह अनाचार नहीं चल सकता। यह भी

कोई बात हुई, दिन दहाड़े....(यानी कि रात के पर्दे में हो तो मुझे कोई शिकायत नहीं !) जरा हिम्मत तो देखो इस आदमी की, अँधेरा हो गया तो क्या मगर है तो अभी शाम ही और साहबजादे इत्मीनान के साथ लौंडिया बगल में लिये घूम रहे हैं !

रात को मैंने यह बात अपनी बीवी से कही । मैंने सोचा था कि यह खबर सुनकर वह आसमान से ढह पड़ेगी लेकिन जब ऐसी कोई बात न हुई तो मुझे बड़ा ताज्जुब हुआ और साथ ही कुछ भुंभलाहट भी कि चाहे जैसी खबर इसे लाकर दो, सोंठ बनो बैठी रहतो हैं, जैसे कुछ बात ही न हुई । कुछ देर तो मैंने इंतजार किया लेकिन जब वह कुछ भी न बोली तो फिर मुझसे न रहा गया और मैंने उसको खोदा — बड़ा लुच्चा आदमी मालूम होता है....

मैंने उसे लुच्चा कह तो दिया मगर जो सच पूछो तो दिल ही दिल में मुझे उससे बड़ा रश्क हो रहा था । इतनी खूबसूरत लड़की इसे कहाँ मिल गयी !... जवाब में उस आदमी ने जैसे मुझसे कहा—निगाह चाहिए !

मेरी बीवी ने मेरी बात का जो जवाब दिया उसका मेरे सवाल से कोई सीधा संबंध न था । मगर इसके लिए क्या किया जा सकता है— औरतों का दिमाग ऐसा ही होता है । सवाल तीतर जवाब बटेर । उसने कहा—उसके घर में औरत है ।

यह तो मुझे भी मालूम है । मगर उससे क्या । घर में औरत रखकर कोई लुच्चापन नहीं कर सकता ? मगर शायद यही उसका मतलब था । जिसके घर में खुद औरत हो, उसे कही और से औरत भगाकर या फुमलाकर लाने की क्या जरूरत ? और फिर औरत औरत के दिल का हाल जानती है । वह जानती है कि जैसे एक म्यान में दो तलवारें नहीं रह सकतीं वैसे ही एक घर में दो औरतें नहीं रह सकतीं । इस चीज पर इतना पक्का भरोसा था मेरी बीवी को कि उसने दुबारा उसके बारे में सोचना भी ज़रूरी नहीं समझा ।

मगर मेरा दिल साफ न हुआ क्योंकि मैं जानता था कि औरतों को अपनी ताकत का कितना गलत अदाजा है। वह अपनी शान में भूली रहती है और मर्द उन्हें उँगलियों पर नचाते हैं।

बहरहाल उस रोज से मुझे उस आदमी में दिलचस्पी हो गयी—कैडे का आदमी है !....और अब मुझे उसके चेहरे पर हमेशा एक हँसी नजर आने लगी, जो कि शायद पहले भी थी लेकिन अब तक मेरा ध्यान उस पर न गया था। उस हँसी से मुझको और भी चिढ़ मालूम होती। मुझको लगता कि जैसे वह मुझे मुँह चिढ़ा रहा है। मुझे ऐसा खयाल करने का कोई कारण न था क्योंकि मेरी स्त्री रूप-रंग में किसी से हेठी नहीं है। लेकिन फिर भी जब यह खयाल मेरे दिल में आया तो कुछ न कुछ बजह होगी ही। एक तो शायद यही कि मैं ऐसी हँसी या मुस्कराहट का कायल नहीं हूँ जो कि कभी चेहरे से अलग ही नहीं होती, कि जैसे किसी ने गोद से उसको वहीं पर चिपका दिया हो ! मैं तो उस हँसी का कायल हूँ कि आयो और छिन मे गयी, जरा-सा मुस्करा लिये और फिर गंभीर हो गये। यह कैसी बेहया हँसी है ! जरूर यह आदमी मुझको मुँह चिढ़ाना चाहता है—नैतिकता की पोटली लिये बैठे रहो तुम लोग, हम तो मजे करते हैं !

मगर बात का तुक कुछ बैठ नहीं रहा था। जिसे आवारागर्दी में मजा मिलता है, वह इतने घरेलू किस्म का जानवर नहीं होता। खाले के यहाँ वृष दुहाने यह जाय, बच्चे को स्कूल छोड़ने यह जाय, किन्ल-पिल्ल सबको साथ लेकर घूमने यह निकले। यह माजरा क्या है ?

आखिर मुझपे न रहा गया और अपनी आदत और सभ्यता के हर उसूल के खिलाफ मैंने छेड़कर उससे बात निकालने और इस राज की तह में पहुँचने का फैसला किया। और अगली ही शाम जब मैंने उसे दूर से आते देखा तो निकलकर बाहर दरवाजे पर खड़ा हो गया और जब वह सामने आया तो मैंने बड़े तपाक से पूछा—कहिए ? आज बड़ी देर हो गयी आपको लौटने में ? किस दफ्तर में काम करते हैं ?

जाहिर है कि गरीब इतने सारे सवालों के लिए तैयार न था और सो भी एक ऐसे आदमी की तरफ से जो अब तक हमेशा उसे देखकर मुंह फेर लेता रहा हो। कुछ एक हैरानी-सी उसके चेहरे पर नजर आयी मगर दूसरे ही क्षण फिर वही मुस्कराहट। लगता है कि यह मुस्कराहट उसकी ढाल है—जब कोई ऐसी बात होती है वह उसी के पीछे जाकर छिप जाता है।

उसने कहा—जी, थोड़ी देर हो गयी आज।....और आगे बढ़ने को हुआ। दूसरी किसी बात का उसने जवाब नहीं दिया। मैंने भी फिर उसे टोकना जरूरी न समझा। आज के लिए इतनी ही मुलाकात काफी है। लागू आदमी हूँ, आसानी से पीछा थोड़े ही छोड़ूंगा।

गरज कि मैंने आसानी से पीछा नहीं छोड़ा और सारी बातें मालूम कर लीं—धीरे-धीरे—लेकिन बातें जो मालूम हुईं उनसे बहुत मायूसी हुई। यों मायूसी की कोई वजह न थी क्योंकि उस आदमी से कोई उम्मीद करना ही बेकार था। लेकिन पता नहीं क्यों उस रोज उसके साथ उस लड़की को देखकर मुझे दिलचस्पी के बहुत बहुत सामान मिलने की उम्मीद हो गयी थी। मगर वह सब कुछ भी नहीं निकला। निहायत सीधा-सपाट किस्सा है यहाँ तक कि उस लड़की वाले मामले में भी कुछ नहीं निकला।

यह मैं नहीं कहता कि काम उसने अच्छा नहीं किया, लेकिन वह बात दूसरी है। काम तो उसने अच्छा किया ही, एक लड़की की आबरू बचायी। पता नहीं कहाँ से यूनिवर्सिटी के कुछ लड़के इस लड़की को जबर्दस्ती या फुसलाकर ले आये थे।

‘उस दिन जब मैं अपने दफ्तर से लौट रहा था, मुझे यों ही कुछ ज्यादा देर हो गयी थी, तो जब मैं पार्क में पहुँचा तो मुझे एक झाड़ो के पीछे से कुछ फुसफुसाहट सुनायी दी। पता नहीं किसने क्या कहा, मेरी समझ में कुछ भी न आया, पर इतना मेरी समझ में जरूर आया कि इस वक्त यहाँ पर ऐसी किसी आवाज का होना कुछ अजीब बात है। जाड़े

के दिन हैं, इस वक्त यहाँ कोई हो भी तो किस लिए और अगर हो भी तो पार्क के भीतरी हिस्से में हो। मैं अभी कुछ तै नहीं कर पाया था और इसी शशपंज में खड़ा था कि मुझको एक पतली-सी चीख सुनायी दी। चीख सुनकर मैं फिर खड़ा न रह सका और लपककर भाड़ी के पीछे पहुँचा। तीन नौजवान और एक जवान लड़की जो न जाने कहाँ से इन लोगों के हाथ लग गयी थी। मुझको देखते ही तीनों जवान फुफकारे और दो जो खड़े थे मेरे ऊपर झपटे और एक का हाथ सीधे मेरे गले पर गया। भगवान् की दया से मेरे भी शरीर में दम है। किसान बाप का बेटा हूँ और पत्थर में हरियाली उगाना हमारा काम है। पुराना खाया-पिया अभी शरीर में बाकी है। मैंने झटका देकर उसका हाथ अलग किया और अंधे की तरह घूँसे चलाने लगा और साथ ही गला फाड़कर चिल्लाये भी जा रहा था। जरूर मेरा चिल्लाना पामलों-जैसा रहा होगा क्योंकि मेरी आवाज सुनकर पार्क के बाहर सड़क पर के कुछ लोग दौड़े हुए आये। मगर तब तक तीनों बदमाश लड़के सर पर पैर रख कर भाग चुके थे। मैंने उनको रोक रखने के लिए पूरी ताकत लगायी लेकिन तीन आदमियों को रोक रखना एक आदमी के बस की चीज न थी। खासी बुरी तरह नोचा था सबो ने, अब तो सब ठीक हो गया।....लड़के भाग गये तो मैंने उस लड़की से कहा कि चलो अब तुम्हें घर पहुँचा आऊँ। लेकिन उस वक्त वह बेचारी इतनी डरी और सहमी हुई थी कि कुछ न कह सकी। थोड़ी देर बाद उसके भी दम में दम आया और वह जोर जोर से रौने लगी—मगर इसलिए नहीं कि तीन हरामजादों ने उसकी आबरू लूटी थी बल्कि इसलिए कि किसी ने कुछ दिया नहीं। क्या क्या वादे करके लाये थे—रंगीन साड़ी ले देंगे, बिलौज का कपड़ा खरीद देंगे, सनीमा दिखायेंगे, सर्कस दिखायेंगे, चाट खिलायेंगे मलाई बरफ खिलायेंगे। मगर वह सब कुछ भी नहीं हुआ। उसकी बातें सुनकर मेरा जी बहुत खटटा हुआ और मेरे दिल में एक बार यह खयाल आया कि मैं क्यों इन लोगों के बीच में पड़ने गया, जो जैसा होता है उसे लोग भी वैसे ही मिल जाते

हैं। जैसी यह कुतिया है वैसे ही साथी भी इसको मिल गये। मैं क्यों बीच में कूद पड़ा? लेकिन यह सब बाद की बातें थी। उस वक्त तो बस वह आवाज थी और मैं था। लेकिन वह चीखी क्यों यह मैं नहीं समझ सका। शायद डर गयी हो, शायद उसको भी मेरो आहट मिली हो और पेशबन्दी करने के खयाल से चीखी हो, मैं कुछ भी नहीं कह सकता। जो हो, मैं उसे लेकर घर आया और उस रात वह मेरे ही यहाँ रही। अगले दिन जब मैंने उससे गाँव का नाम पूछा तब तो वह ऐसी रोयी कि कुछ कहना ही नहीं। बार बार बस यही कहे, भाई मेरी मूंडो काट लेगा, बाप गंडासे से बोटी बोटी अलग कर देगा, कहीं नहीं जाऊँगी, मुझे यही पडा रहने दो। मगर वह कैसे मुमकिन था। मैं इसके लिए बिलकुल तैयार न था। आदमी का चित्त डोलते देर नहीं लगती। परिवारवाला आदमी हूँ। नहीं, यह नहीं हो सकता। आखिरकार मैंने ज़िद करके उसका पता मालूम किया। यहीं बघाडा के आगे उसका गाँव है। अब भाई चाहे मूँड़ी काटे, बाप चाहे गँडासा मारे—उनको लड़की है। अकल होगी तो डांट-फटकारकर घर में वापिस ले लेंगे और जल्दी ही कही बर-बियाह देंगे, बात आयी गयी हो जायगो, कोई जानने भी न पायेगा। और अकल अगर नहीं होगी तो फिर मीरगंज तो है ही। मैं उसी रोज जाकर पहुँचा आया, अब जो कुछ हुआ हो।'

उस वक्त तो मैंने कुछ नहीं कहा और उससे कहने की यह बात भी न थी लेकिन बाद को जब-जब मुझे इस चीज का खयाल आया मैंने मन ही मन उस आदमी को सिर झुकाया और बराबर यही एक बात आ आकर मेरे दिमाग से टकराती रही—आज कितनी कमी है ऐसे आदमियों की जो सही काम को सही जानकर भी नहीं करते और गलत काम को गलत जानकर भी रोकने की कोशिश नहीं करते। हम सभी के पास अपना अपना सिद्धान्त है, बड़ी बड़ी बातें हैं, ऊँचे ऊँचे आदर्श हैं, नहीं हैं तो बस एक चीज—तोला भर हिम्मत और माशा भर, बस एक माशा, विश्वास कि सच बात के लिए उठायी गयी कोई आवाज कभी सरासर बेकार

नहीं होती, हवा के इस घेरे में जिसके बीच हम खड़े हैं उसका कोई न कोई अंश टिक जाता है और टिका रहता है और फिर एक नया हिम्मत का धनी आदमी आता है और आवाज के उस नन्हें से टुकड़े को अपने सीने की नाकन से दोबाला और चौबाला कर देता है। और फिर तुम्हें इससे क्या बहम कि तुम्हारी आवाज किसी ने सुनी या नहीं सुनी। जो इसकी फिक्र करना है उसके गले में हमेशा काँटा पड़ा रहता है, उसके गले में कभी कोई आवाज नहीं फूटती।

मगर यह मैं क्या कहने लगा....हाँ तो धीरे-धीरे उससे मेरी काफी दोस्ती हो गयी और मुझे उसकी जिन्दगी की और भी बातें मालूम हुई। यह लोग अल्मोड़े के किमान थे। पिता काफी छुटपन में ही मर गये थे। घर में जो थोड़ी आराजी थी उसी पर माँ और दो भाइयों और एक बहन का गुजर-बसर होता था। भाइयों में यह छोटा था। बड़ा भाई मामा के साथ अल्मोड़े शहर में रहकर पढ़ता था। धीरे-धीरे उसने वकालत भी पाम कर ली। मगर वकालत पास करना जितना आसान था, वकालत जमाना उतना आसान न था। लिहाजा तीन बरस भ्रम मारने के बाद बड़े भाई साहब भी बीबी बच्चों समेत गाँव पर आ गये और उनके आने के साथ ही घर में कलह भी शुरू हो गया। कुछ तो इसलिए कि खानेवालों की संख्या बढ़ गयी, कुछ इसलिए कि बड़े भाई साहब की वकालत बुद्धि को कहीं तो निकास चाहिए था! गरज कि आये दिन कोई न कोई झगड़ा खड़ा रहता और होते-होते ऐसी नौबत पहुँची कि छोटे भाई ने घर छोड़ देने का निश्चय किया। जिसने अपना खून-पसीना एक करके खेतों को मँवारा था वही उससे निकाल बाहर किया गया और वकील साहब पूरे के मालिक बन बैठे। यह सच है कि उनका समस्त वकीली ज्ञान उनको पूरे का मालिक न बना सकता था लेकिन छोटे भाई को झगड़े की छीछालेदर की बनिस्बत सब कुछ छोड़कर हट जाना पसंद आया और वही उसने किया।

उसके बाद उसने यहाँ आकर नौकरी ढूँढ़ना शुरू की और कई

जगह टक्कर खाने के बाद अब एक ऐसी नौकरी पर पहुँचा है जिसमें पैसा भले कम हो मगर भ्रष्ट-खिटखिट भी कम है। पैसे को कमो वह दो जगह ट्यूशन करके पूरी कर लेता है और अपनी माँ और विधवा बहन और अपने बीवी-बच्चों समेत रहता है। पिछले साल से उसके भाई के दो बच्चे भी उसी के पास आकर रहने लगे हैं क्योंकि बड़े भाई साहब ने पहली पत्नी के मरने पर दूसरा ब्याह कर लिया और इन बच्चों के लिए अपनी नयी माँ के साथ रहना दुभर हो गया। पता नहीं बड़े भाई साहब ने किस मुँह से कहा होगा लेकिन काफी मुमकिन है कि यह हजरत खुद ही जिद करके उन्हें अपने साथ ले आये हों। यही इनका तरीका है।

कोई उसको नहीं जानता, जानना जरूरी भी नहीं है। दुनिया उसके जैसे टकहियल, गुमनाम आदमियों का हिसाब रखने लग जाय, तब तो ठो चुका। ऐसे दुनिया में न जाने कितने पड़े हैं। मगर यही तो सिफत है इस आदमी की कि इसके जैसे दुनिया में हजारों भरे पड़े हैं, मगर सब गुमनाम है, कोई उन्हें नहीं जानता क्योंकि वह सब छोटे आदमी है।

यही वह आदमी है जिसके बारे में मैं आपको बतलाना चाहता था। आप कहेंगे सब कुछ तो बतलाया नाम ही नहीं बतलाया। क्या खूब, गुमनाम आदमी का भी कहीं नाम होता है। उसकी तो बस हलिया होती है।

---

अब तक किसी को इस बात का पता न था कि ऐसा भी कोई खुफिया महकमा कहीं पर है जो इस बात की छानबीन करता है कि कौन अपने माँ-बाप की असली औलाद है और किसके खून में मिलावट है। पंडित ब्रह्मानन्द का भी इस महकमे से कोई संबंध है, यह तो और भी किसी को न मालूम था। लेकिन जब एक रोज दोस्तों की एक टोली में पंडित ब्रह्मानन्द ने एक ऐसे आदमी के बारे में जिसे दुनिया उनका सबसे बड़ा दोस्त समझती थी, यानी सकलदीप सिंह के बारे में ऐसी कुछ बात कही तो लोग एक दूसरे का मुँह ताकने लगे और सबने एक दूसरे की आँखों में कुछ नये सकेत पढ़े। मगर पढ़े कहना सही न होगा क्योंकि पढ़ने को वहाँ क्या रखा था, वह तो एक पहली थी जो सबके चेहरे पर लिख गयी थी। सबसे पहली बात जो लोगों को पहली मालूम होती थी, वह यह थी कि ब्रह्मानन्द जी ने अपने ही सबसे बड़े दोस्त का भण्डाफोड़ करना कैसे मंजूर किया, यानी कि अगर यह मान भी

अगर को औलाद

ले कि ब्रह्मानन्द जी की बात में सच्चाई है। दोस्त का ऐब आदमी ढँकता है कि जमाने भर में उधाड़ता फिरता है ? जब देखिए जहाँ देखिए ब्रह्मानन्द और सकलदीप सिंह हमेशा साथ दिखायी देते थे और अब यह मजा देखिए कि पंडित ब्रह्मानन्द अपने ही दोस्त को बेपर्दा कर रहे हैं ! यह बात लोगों को बहुत अजीब मालूम हुई। लेकिन गहराई में देखिए तो इसमें ऐसी कोई ताज्जुब की बात नहीं है—आपसी संबंध अपनी जगह पर और सच्चाई अपनी जगह। आपसी संबंधों के लिए सच्चाई का खून कर दें, पंडित ब्रह्म नन्द कभी ऐसे नहीं रहे।

दूसरी चीज जो लोगों के नजदीक अभी साफ नहीं हुई थी यह थी कि सकलदीप सिंह के खून में किस किस्म का ऐब है ? कुछ लोगो का खयाल था कि सकलदीप चमाइन के पेट से थे। गाँवों में आये दिन हुआ करता है, ठाकुर साहब की निगाह पर कोई अच्छी नमकीन चमाइन चढ़ी और उन्होंने उसे उठाकर अपने घर में डाल लिया या मान लीजिए घर में नहीं भी डाला, यों ही उससे मन बहलाने लगे। ऐसा ही कुछ सकलदीप के बाप ने किया होगा। ठाकुरों का यह पुराना कायदा है।.... मगर भाई इसकी माँ रही होगी एक ही चीज ! सकलदीप को देखो न कैसा गोरा-चिट्ठा रक्खा है ...

इस पर एक साहब ने रायजनी की—नहीं साहब, कुछ भी कहिए, कोई-कोई चमारिनें ऐसी होती हैं कि रानियाँ उनके तलवे चाटें। पता नहीं चमारों की कौम में ऐसी सुन्दरियाँ कहाँ से आ जाती हैं !

कैसे मुमकिन था कि इस बात पर चुटकी न ली जाती। एक साहब बोले—अमे दयाशंकर, तुम तो बातें ही सुन सुनकर लोटे जाते हो और अभी जो कोई सामने आ जाय....

तीसरे साहब ने चुहल के रंग को दूर करने की गरज से एक वैज्ञानिक सिद्धान्त की स्थापना की। बोले—सन्तान शास्त्र की किताबों में मैंने पढ़ा है कि इस किस्म की औलादें आम तौर पर ज्यादा जहीन, ज्यादा खूबसूरत, ज्यादा तगड़ी होती हैं....

इस पर एक साहब ने रद्दा कसा—यह तो खैर कहने की बातें हैं, तुमसे ज्यादा जहीन, तुमसे ज्यादा खूबसूरत....

बात पूरी न हो सकी और एक जोर का कहकहा पड़ा ।

कहकहा थमा तो सबसेना साहब ने बात को फिर गम्भीर मोड़ देने की कोशिश करते हुए कहा—तो आप कहना क्या चाहते हैं ? नव ग़ादियाँ मंख कर दी जायें और आगे से यह सिलमिला हो खत्म कर दिया जाय ? जिसका जिस पर दिल आ जाय, जिसकी पटरी जिस से बैठ जाय ?

—मैं यह कब कहता हूँ । मैं तो एक उमूल की बात कह रहा था ।

गरज की इसी तरह बातें होती रहीं । मगर कुल मिलाकर इससे सकलदीप सिंह की हत्या पूरी तरह न की जा सकी, क्योंकि चमाइनों का घर में डाल लेने का दस्तूर-सा बग गया है जिसे लोग आम तौर पर जानते हैं । इसलिए किसी को इसमें ऐसी कोई भयानक बात नहीं नजर आई । मगर तीन-चार रोज बाद जब इस मवाल पर कुछ ऐसी हवा उड़ी कि सकलदीप की माँ एक चमार बेलदार से फँस गयी थी और सकलदीप उस चमार बाप का बेटा है तब बात बहुत बदल गई, क्योंकि उन सब लोगों के नजदीक यह एक बहुत ही बेजा हरकत थी । यह ठीक है कि इस बादवाला विचारधारा का मेल सकलदीप के रंग-रूप से उतना नहीं बैठता था—तगड़े, हैकल, खूबसूरत चमार मर्द तो उतन बहुत पाये नहीं जाते—मगर बात तो बात है, बस पर लगा दा, उड़ने लगती है ।

छोड़ो भी, बात तो वां चिड़िया है जा बेपर की भी उड़ती है ।

गरज कि वावुओं की उस ऊबो हुई जिन्दगी में दिलबस्तगी का यह एक अच्छा सामान पैदा हो गया । अभी महोनों तक इस बात में ताजगी रहेगी और सकलदीप सिंह चमार की श्रीलाद हा या न हां, बात-चीत का यह शगल क्या बुरा है ।

शगल तो बुरा नहीं है मगर अक्सर लोगों के दिल में कहीं यह चार भी ज़रूर बैठ गया कि आज तो सकलदीप सिंह हैं, कल के रोज कहीं हम

पर बात न आ जाय ! अपने जनम का हाल कौन जानता है ? और जब इस तरह की खुफिया छानबीन का महकमा कहीं पर है तो कल के दिन उसकी तलवार हमारी गर्दन पर भी गिर सकती है । हम कहाँ-कहाँ जवाब देते फिरेंगे ?

किस्सा कोताह इस चीज के दो नतीजे हुए—एक तो यह कि लोग ग्राम तौर पर सकलदीप से कतराने लगे और जहाँ पहले उनको सकलदीप की हर बात में अच्छाईयाँ नजर आती थीं वहाँ अब ऐब ही ऐब दिखाई देने लगे । पहले जहाँ लोग यह कहते थे कि सकलदीप बाबू बहुत अच्छे हैं, जूनियरों से भी बहुत मोठा बोलते हैं, वहाँ अब यह कहने लगे—मीठी छुरी है, मीठी छुरी ! मिर्जापुर का है न ! एक ही घाघ है, हमसे तुमसे कुछ बोलता है और साहब से पता नहीं जाकर क्या जड़ आता है !

इसी तरह और भी तमाम बातें थीं । पहले सकलदीप का उठना-बैठना, बोल-चाल सबको बहुत भाता था और सब उनकी तहजीब की तारीफ करते थे, अब वह चीज भी उनके खिलाफ चली गई और लोगों ने कहना शुरू किया—क्यों न हो ! बाप ने रणडी के कोठे पर भेज भेजकर तालीम दिलवायी है !

तो एक तो नतीजा इस चीज का यह हुआ और दूसरा नतीजा यह हुआ कि पंडित ब्रह्मानन्द की धाक अपने दफ्तर में अच्छी तरह जम गई । सुपरिन्टेण्डेंट साहब से लेकर टाइप बाबू तक सभी उनसे खौफ खाने लगे । पता नहीं कब किसके नुफे में कौन सा ऐब निकल आये । लोग अब उनसे मिलते ही हाथ उठाकर सलाम करते । वह किसी से दो बातें कर लेते तो वह निहाल हो जाता । बड़े साहब जो पहले उन्हें बगलोल समझते थे, अब हर बात में उनका काफी लिहाज करने लगे और लगभग छः महोने बाद जब पुराने हेड क्लर्क रामस्वरूप निगम साहब पचपनसाले में रिटायर हुए और उनकी जगह पर दफ्तर के ही किसी तजुर्बेकार आदमी की नियुक्ति का सवाल उठा तो बड़े साहब को यह समझने में ज्यादा देर नहीं लगी कि गो उस कुर्सी का हक सबसे पहले सकलदीप सिंह को

पहुँचता है, काबलियत और सर्विस की सोनियारिटी दोनों के खयाल से, मगर अब इस हालत में उनको उस कुर्सी पर बिठालना बेकार है क्योंकि दफ्तर को अब अपने बस में रखना उनके बूते की चीज न होगी और इन सभी बातों का खयाल रखते हुए अब उनके बाद जिनका नम्बर है यानी पण्डित ब्रह्मानन्द, उन्हीं को यह जगह दी जानी चाहिए ।

उस शाम । जब पण्डित ब्रह्मानन्द रिक्शे पर सवार होकर अपने घर चले तो उनका दिमाग सातवें आसमान की सैर कर रहा था और उन्हें किसी चीज का होश न था ।

रिक्शेवाले को पैसे देकर वह घर में चले गए, बीवी के गाल में हल्के से चुटकी ली और चार साल के बेटे वशिष्ठ को गोद में लेकर इतनी जोर से उछाला कि उसका सर धरन से टकराते-टकराते बचा और अखबार खोलकर हलवे का इन्तजार करने लगे ।

तभी बाहर से 'बाबूजी' की आवाज आई और पण्डित ब्रह्मानन्द कुछ झुंझलाते हुए बाहर गये ।

चमार की झौलाद उस रिक्शेवाले ने उनके हाथ में बटुआ देते हुए कहा—हुजूर, आप क बेग । बड़ी दूर जायके हमार निगाह पड़ल । भगवान क मर्जी । धौड़लै आवत हई ।

पण्डित जी ने खमोशी से बटुआ ले लिया और घर के भीतर आ गये ।

नादान रिक्शेवाला थोड़ी देर खड़ा रहा, फिर वह भी चला गया ।

## लाट साहब की आग

अगले मघाह नगर में लाट साहब का आगमन होगा, यह खबर बिजली की तरह मिनटा में सब जगह फैल गई और समझिये कि एक छोटा-मोटा भूचाल-सा आ गया। यहाँ वहाँ सब जगह टेलीफोन की घटिया घनघनाने लगी और वर्दीपोश चपरासी इधर से उधर दौड़ने लगे। हवा में एक दरारत-सी महसूस होने लगी और मस्थाओं के मुखिया बोखलाये हाँसे फिरने लगे। जैसे भी हो गवर्नर साहब के आग की धूल हमारे यहाँ भी गिरनी चाहिये। क्या काम रहता है बेचारों को। माँस लेना महाल होता है। हर वक्त लोग घेरे खड़े रहते हैं। इससे मिलो, उससे मिलो, इस कालेज का शिलान्यास, उस मूर्ति का प्रनावरण, कहीं किसी बाल विकास मण्डल की रजत जयन्ती पर अक्सर पर आशीर्वादन, कहीं किसी महिला शिक्षण भवन का उद्घाटन। और फिर डेपुटेशन डेपुटेशन पर डेपुटेशन। पछिए, वह भा आदमी ही तो है, कोई घनचक्कर तो है नहीं। मगर चाग मानें तब तो। सबको बस यही धुन है कि हम

कैसे लाट साहब को पाये और उठाकर अपने जेब में धर लें।

जहाँ इस तरह की आपाधापी मची हो वहाँ कोमल जी की परेशानी भी वाजिब है। लेकिन बस इतनी ही कि हाँ, जरा सिलसिला बैठाना पड़ेगा। वरना उनका हिसाब-किताब सब ठीक है, बिलकुल पक्का पोढ़ा। गवर्नर साहब के जो प्राइवेट सेक्रेटरी हैं न, उनमें और कोमल जी के मौमियाउर भाई पण्डित रामदयाल के साथ पण्डित हरीगम के वहनोई अजोघ्यादीन की बुआ के लड़के जगदीश में बहुत बनती है। गरज कि कोमल जी के लिए परेशानी की कोई वान नहीं है।

इसी तरह श्रीगे की भी पट्ट लाट साहब तक है। सभी का कोई न कोई रिश्ता उन तक पहुँचता है, और सब की यही मनोकामना है कि चाहे दो ही मिनट के लिए सही, गवर्नर साहब हमारे यहाँ चले चलें। यह कुछ ऐसी ही चीज है जैसी परब के नहान के दिन गंगा जी में, अर्थात् कीचड़ के उम घिरे हुए चढ़ब-चे में, डुबकी लगाना (गंगा जी के खुले पानी तक कौन पहुँचता है, अगर उतरता भी क्या है, पयोजन तो इतने हो से सिद्ध हो जाता है।) भले इसमें पीछे सौ-पचास, हजार-पाँच सौ जाने ही क्यों न चली जायें।

इस भूचाल की धमक यूनिवर्सिटी तक कैसे न पहुँचती। और जो सब पहुँचते तो धमक पहुँचने की क्या बात है, खास वही तो आ रहे हैं गवर्नर साहब। बाहर वाले तो खामखाह उनको बीच में ही लोंक लेने का कोशिश कर रहे हैं। मगर गमा भी बड़ी हो सकता है। जिस काम के लिए आ रहे हैं चान्मलर भाटव, पट्ट उसे करेगा कि उटकरलेस यहाँ-वहाँ घूमेंगे। मगर कौन समझाए इन लोगों की। अच्छा है दरवाजे पर सिर मार के चले जायेंगे। खुद हमारे फंक्शन में होंगे कि निबटाना मुश्किल हो जायगा। यूनिवर्सिटी डिनर, लां डिपार्टमेंट का ऐटहोम, ड्रैमैटिक एसोसिएशन का प्ले, हिन्दी विभाग की ओर से मानपत्र, नवलकलिका की कवि-गोष्ठी, राजनीति विभाग में विश्व शांति की समस्या पर व्याख्यान, फिजिक्स डिपार्टमेंट में हाइड्रोजन बम के बारे में लोकोपयोगी व्याख्यान—इतना कार्यक्रम

तो निश्चित हो चुका है। हाँ, विमेन्स कालेज में भी एक ऐट होम होगा।

लिहाजा यूनिवर्सिटी में भी सब अपनी-अपनी दौड़-भाग में लग गये हैं। सब अपनी कारगुजारी दिखलाना चाहते हैं। भला क्यों कोई डिपार्टमेंट फिसड्डी रह जाये। चान्सलर का आगमन कोई छोटी बात है ?

रास्तों की सफाई मुस्तैदी से हो रही है, बाग की आबपाशी की तरफ खास ध्यान दिया जा रहा है। (वही लाँ डिपार्टमेंट वाला ऐट होम होगा।) सूट और शेरवानियों पर जोर-शोर से इस्त्री हो रही है। स्वागत भाषण और मानपत्र सुगन्धित शब्दावली में लिपिबद्ध किये जा रहे हैं। ऐट होम और डिनर के मीनू पर बहसें चल रही हैं। ड्रामे के रिहर्सल की रफ्तार तेज कर दी गई है। सात लड़कियों को छाँट कर उन्हें एक स्वागत गान का अभ्यास कराया जा रहा है। संगीत और नृत्य के कार्यक्रम की विशद रूपरेखा बनाई जा रही है।

और प्रियनाथ उत्साह की यह बाढ़ देख देखकर हैरान है। उसे पता नहीं है कि चान्सलर के नाम में जादू होता है। ये तमाम थके-बुझे लोग जिन्हें हर चीज में उकताहट मालूम होती है, जिनकी हर बात हर अन्दाज में एक थकावट होती है, जो सारी दुनिया को बेवकूफ और खुद को अक्ल का पुतला समझते हैं, मगर जिन्होंने पिछले बीस बरस में एक भी किताब नहीं पढ़ी, एक भी नई बात नहीं कही, जिनके बीस बरस पुराने नोट्स की कापी सालहासाल के इस्तेमाल से बदरंग हो गई है, जिन्होंने 'बोरडम' का एक सम्पूर्ण जीवन-दर्शन आविष्कार कर लिया है, और जिनकी बात-चीत हमेशा इन्हीं पटरियों पर दौड़ती है—

—अरे प्रियनाथ, तुम्हें कुछ पता है अगली काउंसिल मीटिंग में वर्मा साहब का ग्रुप किस तरफ वोट करने जा रहा है ? सुना है भीतर ही भीतर उन्होंने अपनी ताकत बहुत बढ़ा ली है, चतुर्वेदी जी के बहुत-से आदमी फोड़ लिये हैं।

—कल मिस्टर त्रिपाठी की ओर से एक साहब मेरे पास आये थे। उन्होंने मुझको भांसा-पट्टी देने की बहुत कोशिश की, बहुत सब्ज बाग

दिखलाए, मगर मैंने कुछ नहीं कहा। एक शब्द भी नहीं। पता नहीं ऊँट किस करवट बैठे।

—चटर्जी साहब का दिमाग फिर गया है शायद। कल उनका एक स्टूडेंट मुझ से उनकी बहुत शिकायत कर रहा था, कह रहा था....

—भई, यह मिस गांगुली जो पटने से आई हैं, चटर्जी साहब ने बहुत मोच-समझकर इनको बुलाया है। बिल्कुल पूनम का चाँद समझो। बहुत-बहुत गुल खिलेंगे, देखते चलो।

—मेहता और मिस कौल का अफेयर तो अब हृद से ज्यादा बढ़ गया है। जहाँ देखो, वहाँ दोनों साथ। उस दिन, रात एक बजे दोनों क्लार्क होटल से बाहर निकलते देखे गये। इससे तो अच्छा है शादी ही कर लें।

—शंकर दयाल शर्मा, वह रिसर्च स्कालर है न संस्कृत का, उपाध्याय जी उसी से अपनी बेटी का ब्याह करना चाहते हैं। आना-जाना काफी बढ़ गया है।

—कल वह 'बंबुलबीज' वाली पार्टी बहुत अच्छी थी। 'स्टैण्डर्ड' की कैंटीन थी।

—हलो....(और इसके बाद पटरी नहीं है, इसलिए गाड़ी रुक जाती है और फक-फक-फक-फक घुआँ छोड़ने लगती है, सिगरेट का !)

हो गई आज, चान्सलर की पार्टी। क्या कहने हैं ! लाट ही ठहरे। यूनिवर्सिटी वालों के अलावा शहर के सभी बड़े-बड़े वकील, जज, बैरिस्टर, डाक्टर आमन्त्रित थे। यूनिवर्सिटी कम्पाउण्ड में सब जगह मोटरें ही मोटरें दिखाई दे रही थीं। एक से एक नई, बिल्कुल लेटेस्ट मॉडल की, चमचम चमकती हुई, लम्बी, छरहरी मोटरें।

सजे हुए फाटक के भीतर घुसते ही रोशनी की बहार थी। रंग-बिरंगे कुमकुमों की झालर रास्ते के दोनों तरफ दूर तक चली गई थी। पेड़ भी सब इन्हीं रंगीन कुमकुमों से जगमग थे, जिनका बराबर जलना और बुझना कुछ ऐसा समां बाँध रहा था कि जैसे आम और नीम और बरगद की उन बनी शाखों पर यहाँ-वहाँ सब जगह परियों के गोल नाच रहे हों और ये कुम-

कुमे उनके हुस्न और फन के आशिक रईसजादे हों, जो रंग-बिरंगे कपडे पहन कर इस महफिल में आए हैं और नाचनेवालियों की हर बाँकी अदा पर एक दूसरे को कर्नाखियाँ मार रहे हैं ।

हाल का तो कुछ कहना ही नहीं । जो हाल ग्वास इसी काम के लिए बनवाया गया है, विशिष्ट अतिथियों के स्वागत-सत्कार के लिए, उसकी शान का क्या कहना । झाड़-फानूम सब अपनी जगह पर दुरुस्त, ऐसे कि लखनऊ का इमामवाडा याद आ जाये, फर्क बस इतना कि पहले जहाँ कंदीलें जलती थीं, वहाँ अब बिजली के कुमकुमों की बहार है और रोशनी इतनी कि दिन का-सा उजाला फैला हुआ है । हाल के चारों तरफ किनारे-किनारे फूल-पत्तियों की सजावट थी । मेजें लगी हुई थी । मेजों पर तश्तरियाँ और कन्द-चम्मच चुने जा चुके थे । साफ-सुथरा बर्दिया पहने हुए बैरे खानों के तान और डोंगे लिये हुए डधर-उधर खड़े रहे थे ।

अनिश्चित-अभ्यागत अपनी-अपनी टोलियों में बंटकर यहाँ-वहाँ मेजों के डेढ़-गिट्टे बैठ गये थे । खूब बनी-बँवरी हुई, रेशम की एक से एक मुन्दर, रंग-बिरंगी साट्टियाँ में लिपटी हुई स्त्रियाँ अलग दो मेजों पर बैठी थी । कुछ पुरुषों के साथ भी बैठा था । सेमल के फूलों की तरह हस्की-फुल्की बातचीत हवा में उड़ रही थी और उसकी पकड़ पाना आसान न था । अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति से लेकर सबसे ताजे स्कैण्डल तक बातचीत का फैलाव था, और स्कैण्डल की रसीली चर्चा के समय लोगों का स्वर आप से आप मद्धिम पड़ जाना, उनके नयने फड़कने लगते, आँखें चमकने लगतीं और रस की गागर उनके चेहरों पर लुढ़क जाती । कुछ मेजों पर स्त्रियाँ भी, ब्यस्क भिम भाट्टिबाणें भी, जिनकी संख्या अधिक न थी, इस बातचीत में मजे में योग दे रही थीं । जरूर दे रही होंगी, क्योंकि बीच-बीच में भारी पुरुष कण्ठों के कटकहे के साथ उनकी सुरीली खिलखिलाहट भी सुनाई पड़ जाती थी ।

बैरे दौड़-दौड़ कर मेजों पर चीजें पहुँचा रहे थे । बीच की बड़ी मेज चान्सलर साहब और कुछ विशिष्टतम व्यक्तियों के लिए सुरक्षित थी ।

दम पर चान्सलर साहब के साथ वाइस-चान्सलर, विभागों के अध्यक्ष और डीन, वाइस-चान्सलर के कुछ खास चाहते लेक्चरर और कुछ सुन्दरिया अपने विशेषाधिकार से विराजमान थी। भोजन-व्यापार नितांत आनुपांगिक भाव से चल रहा था। कुलपति महोदय स्पष्ट ही बहुत अल्प-भोजी व्यक्ति थे। वह कभी इस चीज का एक लुकमा उठा लेते, कभी उस चीज का। और वाइस-चान्सलर साहब तनिक भी निरुन्माहित हुए बिना कभी उनसे यह चीज कभी वह चीज लेने का याचनापूर्ण आग्रह कर रहे थे। चान्सलर साहब बहुत गम्भीर मुख-मूद्रा बनाये बैठे थे और बीच-बीच में बहुत धीमे स्वर में कुछ पढ़ लेते थे जिसके उत्तर में वाइस-चान्सलर साहब बहुत आविष्ट होकर अथवा संभ्रमपूर्वक आकर्ण मुस्कान के साथ कुछ उत्तर दे देते थे, कुछ इस तरह कि जैसे कालीन की तरह जमीन पर बिछ जा रहे हों। उपकुलपति का उत्तर सुनकर कुलपति महोदय या तो वाइस-प्रो-व्हायरकन बैठे रहते और मेज पर बैठे हुए उनके सब पार्षद खीस निपारे उनका मुँह जोड़ते रहते, या एक संचित-सी निर्यक् मुस्कान उनके चेहरे पर फैल जाती, जिस दशा में गण-समूह अनि-रिक्त उन्साह से हँसने लगता, कुछ तो कुलपति महोदय को प्रसन्न करने के लिए और कुछ अपने रुढ़ श्वास को बाहर फेंकने के लिए। सब ऐसा ममझने की कोशिश कर रहे थे कि हम बड़े भाग्यशाली हैं जो आज हम चान्सलर साहब और वाइस-चान्सलर साहब के साथ ही मेज पर बैठकर खाना खाने का मौका मिल रहा है, तो भी स्वस्ति का बोध किसी को न था। सबके मन की मच्ची कराह यही थी कि कैसे इस पीड़ा का अंत हो।

इस पूरे समाज में बस तीन लोग थे जिन्हें इस विराट् नाटक से कोई प्रयोजन न था और जो निर्लिप्त भाव से उधर दूर के एक कोने में बैठे हुए थे। उनका नाम बतलाने में कोई बुराई नहीं है।...पर लाभ भी क्या है, जबकि....उस पागल बुढ़े के साथ उसका युग भी बीत जाने वाला है। इतना ही परिचय काफी है कि वह उन पुराने सनकियों में से

हैं जो विश्वविद्यालय को विद्यापीठ समझते हैं, विद्या का अभ्यास और विद्या का मुक्त दान जिनके जीवन का एकमात्र अनुराग रहा है ।

युग की दौड़ में पिछड़े हुए उन्हीं असफल व्यक्तियों में से एक वह है जो इस समय अपने दो शोध-छात्रों के साथ अलग एक मेज पर बैठा हुआ मुक्त भाव से रुचिर व्यंजनों का भोग लगा रहा था । कहना मुश्किल है कि उसका विशेष ध्यान अपनी तश्तरी के पुलाव पर था या आसपास हो रहे नाटक पर ।

---

## दुपार भन रात और एक किनारा

किसी नये मुहल्ले में जब कोई कुत्ता पहुँचता है, तब आपने देखा है क्या होता है ? तब यह होता है कि एक-एक कुत्ता जो उसको रास्ते में मिलता है, सबसे पहले उसको सूँघता है। यह उनके बीच परिचय का सूत्रपात है। परिचय का बहुत कुछ ऐसा ही सूत्रपात उस समय भी होता है जब कोई मोटर किसी नये मुहल्ले में पहुँचती है। फर्क बस इतना होता है कि नयी मोटर को सूँघने-सहलाने के लिए मुहल्ले की पुरानी मोटरें नहीं, बच्चे पहुँचते हैं। और वह एक अजीब आलम होता है जब कि एक-एक बच्चा आकर मोटर को छूना चाहता है, आगे से, पीछे से, ऊपर से, नीचे से। भगवान् जाने, मोटर के पीछे बच्चे क्यों इतने पागल रहते हैं। खिलौनों में भी सबसे अच्छी क्या चीज ? मोटर। और फिर कहाँ वह बिस्तेभर की मोटर और कहाँ यह लंबी-चोड़ी हाथी-जैसी मोटर। मगर मोटर तो मोटर, यानी

एक खिलौना, छोटा चाहे बड़ा ।

इस वक्त कुछ भी नहीं तो एक बीस लड़कियों की टोली मेरी मोटर के इर्द-गिर्द घूम रही थी । उनके हाथ-पैर फड़क रहे थे और वह ललचायी आँखों से मोटर को देख रहे थे । काश कि यह मनहूस (यानी मैं) मोटर में न होता ।

मगर मैं कैसे न होता । और इस नाटक में इतना मजा आ रहा था मुझे कि क्या कहूँ । निर्मल पास के एक घर में मरीज देखने गया हुआ था और मैं जो यों ही उसकी अर्दली में इतनी दूर चला आया था, मोटर में बैठा बैठा उसका इंतजार कर रहा था और लगे हाथ यह तमाशा पा गया था ।

मैं एक मोटा-मा, खुशबूदार सिगार मुँह में दबाये घाऊषप्प की तरह बैठता था और लगभग बीस बच्चों की एक टोली मोटर को घेरे हुए सहमी-सी खड़ी थी । भगवान् की दया से मैं यों भी काफी भारी-भरकम हूँ, ऊपर से मेरा रोबीला चेहरा, खासकर ये घनी-घनी जड़ेली मूँछें मेरी, इनको देखकर तो अच्छे-अच्छे दबसट में आ जाते हैं, ये बच्चे गरीब किस गिनती में हैं ।

मैं मुँह में एक शब्द नहीं निकाल रहा था, बस घाऊषप्प की तरह बैठा था और सिगार पी रहा था और इन श्रोकियों को सताने का मजा ले रहा था । बच्चे इधर-उधर कूदते फिर रहे थे और कभी-कभी आँखों ही आँखों में एक दूसरे से कुछ कह-सुन भी लेते थे, मगर किसी की हिम्मत न पड़ती थी कि गाड़ी छू भी ले ।

अगर कहीं नेटिव लड़के उनकी मोटर छू लें तो गोरे ठोकर मार देते थे । तभी से यह दहशत पीढ़ी-दर-पीढ़ी चली आ रही है । मोटर और साहब—एक ही चीज के दो नाम हैं । मोटर के साथ खिलवाड़ करना बुरी बात है । मैं मोटर में था, इसलिए मैं भी साहब था, इसलिए मुझसे भी उनको डरना चाहिए—भले मेरा रंग साँवला हो । साँवले-गोरे से साहबियत को क्या मतलब ? क्या साहब सब गोरे ही होते हैं ? गलत बात । फादर एन्नम भी तो साहब हैं—भले उनका रंग उल्टे तबे का हो । साहबियत और चीज है । रंग से उसका कोई वास्ता नहीं । साहबियत वह चीज है जो दूसरे को

जगती हूश समझती है, उजड़ु देहाती । साहबियत वह चीज है जो खुद को बादशाह और बाकी दुनिया को अपनी पालकी ढोने वाला गुलाम समझती है ।

मिशनरी साहबों की इस बस्ती के ये देहाती लड़के भी अपने ढंग से इस चीज को खूब समझते थे । रोज ही यह चीज उनके देखने में आती थी कि आज तक जिस लड़के का नाम पल्टू था वह कल से पीटर हो गया । पल्टू से पीटर बनते ही पल्टू का दिमाग जरा उड़ने लगता और उसकी चाल में भी एक हलकी-सी ऐंठ आ जाती—मगर वह अपने साथियों के बीच ही । ऊपर साहबों के सामने जाते तो अब भी उसकी घिग्घी बँधती है ।

और वही चीज साहबियत है । वह कभी अपने राज-सिंहासन से नीचे नहीं उतरती और उसके हुजूर में जाते हमेशा इसी तरह डर मालूम होता है क्योंकि वह अकसर जबान से ज्यादा अपनी निगाहों से ऐसी बातें कह देती हैं जिनसे होल मालूम होता है ।

इन बच्चों के दिल में कितना डर समाया हुआ है, मैंने अपने मन में कहा और एक हलकी-सी तकलीफ महसूस की ।

और तभी, जैसे मेरी बात के जवाब में, एक साँवला-सा, तीखे नाक-नक्शे का, दुबला-पतला लड़का, यही आठ नौ साल का, आया और दूसरे जहाँ मोटर को लालायित नेत्रों से देखते हुए सहमे-सहमे-से खड़े थे, वहाँ वह सीधे मोटर पर पहुँचा, इधर-उधर दो-चार जगह हाथ फेरा और फिर हेडलाइट का मुआयना करने लगा और अपने एक दोस्त से बोला—तुम्हें कुछ पता भी है, इतनी तेज रोशनी निकलती है इसमें से—कि गैस मात है । रात होती तो दिखलाता तुम्हको ।

मैंने उसकी ये सभी हरकतें देखीं, मगर जाहिर ऐसा किया कि नहीं देखा । आखिरी बदस्तूर एक किताब पर गड़ी रहीं और सिगार का खुशबूदार धुआँ बदस्तूर मुँह से निकलता रहा । मैं यह दिखलाना चाहता था कि यह लड़का मोटर के साथ जो कुछ खिलवाड़ कर रहा है वह मेरे अनजाने में नहीं उसकी मजाल थी !

पर वह लड़का कुछ ऐसा हठीला था कि जैसे उसको मेरे स्वामित्व का इतना आभास भी स्वीकार न हो !

उसने दरवाजे के सामने आकर बेधड़क मुझसे कहा—अपना हारन बजाइए । हम सुनेंगे ।

मैंने ऐसा दिखलाया कि जैसे अपनी किताब में बुरी तरह डबा हुआ है और मुझे किसी की बात की कोई खबर नहीं है । बड़ी मुश्किल से मैंने नजर ऊपर उठायी । वही लड़का मुसकराना हुआ खड़ा था । और उसने बिना झिझक अपनी बात दुहरायी, ठीक उन्हीं शब्दों में—अपना हारन बजाइए । हम सुनेंगे ।

जहाँ इस शान से हुक्म दिया जा रहा हो वहाँ दूसरा उपाय भी क्या था । मैंने वैसा ही भारी मुंह बनाये दो-तीन बार हारन बजा दिया । बेटरी नयी थी, हारन इस शान से बोला कि दो-तीन लड़के जो बिल्कुल पास खड़े थे चौंक गये । यह लड़का, जो इन सबका सरदार था, मारे खुशी के उछलने और ताली बजाने लगा । बोला—सुना गफूर ? सुना चंदू ? विलियम, सुना तुमने ? कैसे बोलता है, गधे के जैसा—भो S S S

फिर मुझसे बोला—फिर बजाइए । बड़ा अच्छा है ।

मैंने फिर बजा दिया । अब तो सबकी आँखें खुशी से नाचने लगीं और कुछ लड़के जो जरा दूर खड़े थे, वह भी पास आ गये । अब शायद मेरी तरफ से उनका डर भी कुछ-कुछ छूटने लगा था, गो मैं अब भी वही साढ़े छः फुट का ग्राइंडील आदमी था जिसकी झाड़ू-जैसी घनी-घनी मूँछें थीं और जो पट्टह सेर का भारी मुंह लटकाये था ।

लिहाजा अपने सरदार की उस पहलकदमी के तुर्फल में अब बीस-बाइस छोकरी की वह पूरी टोली पास सिमट आयी और बीस-बाइस जोड़ा आँखों ने, हाथों ने, गाड़ी का बाकायदा मुआयना शुरू कर दिया । कोई बॉनेट को मुहब्बत से सहलाने लगा तो कोई सितार बजाने की तरह ग्रिल पर जैंगलियाँ ही बौड़ाने लगा और हारन पर तो जैसे सबकी एकसाँ निगाह थी । कैसी मजेदार चीज है यह हारन, हाथ रखते ही—पोंS S S !

मगर साहब ज्यादातर को तो बंदरों की तरह सबसे पहले अपना मुखड़ा देखने की पड़ी थी । लिहाजा एक-एक पहिये के पास तीन-तीन चार-चार लडके बैठ गए और पहिये पर लगे हुए चमकदार सफेद कटोरे में अपना चिबिल्ला मुखड़ा देखने लगे । बल्कि इसी के पीछे उनमें आपस में कुछ धक्का-मुक्की भी हो गयी । मगर खैर एक वक्त आया जब मुखड़ा देखना समाप्त हुआ और तब गाड़ी की शरीर-रचना की सांगोपांग परीक्षा आरम्भ हुई । गाड़ी में तेल कहाँ से पहुँचता है, दरवाजा आप-से-आप क्यों बंद हो जाता है, मोटर के भीतर रोशनी कैसे होती है, उसका बटन कहाँ है, यह छोटी लाइट क्यों लगी है, गाड़ी का रंग काला क्यों है, लाल क्यों नहीं है, लाल सबसे अच्छा रंग होता है—यानी कि हर तरह की टोका-टिप्पणी का बाजार गर्म था ।

मैं आँखें तो भरसक किताब पर गड़ाये था मगर मेरे कान उन्हीं की बातों पर लगे थे ।

—अबे देख नत्थू, तेल यहाँ से भरा जाता है । तेल भरकर यह टोपी लगा दी जाती है । मगर तू खोल नहीं सकता इस टोपी को—ताला लगा है । हमारे पलेटन (पैटन) साहब की मोटर में भी ऐसा ही है ।

—तू पूछता था करीमा, यह छोटी लाइट काहे के लिए है । कैसा बुद्धू है तू भी । मान ले बड़ी लाइट फेल हो जाय, तब ?

—बड़ा आया, लाल लाल ! लाल भी कोई रंग है । तेरे बाप ने भी कभी कोई गाड़ी देखी थी ! गाड़ी का रंग पीला सबसे अच्छा, एकदम आसमान के जैसा ।

किसी ने गलती ठीक करने के खयाल से कहा—पीला नहीं मैथ्यूज, नीला....

मैथ्यूज को इस बात पर बड़ी हँसी आयी—सुनो इसकी बात, आसमान नीला होता है ! हो हो हो !

तभी मुझे सुनायी दिया वह लडका कह रहा था—यह दरवाजा कैसे खुलता है ? आप हमको मोटर पर थोड़ा घुमा नहीं देंगे ? बस थोड़ा-सा ।

यह सामने जो मैदान है न, वहीं से वापस ले आइएगा। मोटर में बैठने को हम सबका जो बहुत चाह रहा है।

मैंने उसके मुँह की तरफ देखा। वहाँ याचना न थी, आदेश था।

मैंने कुछ नहीं कहा, बस उस टोली पर एक नजर डाली—इतने सारे लड़के ! मोटर में समायेंगे कैसे ?

लड़के ने मेरी निगाहें पढ़ लीं। उसके पास जवाब तैयार था। बोला—  
दो बार में सब हो जायेंगे।

अब मुझसे न रहा गया और मैं भी हलके से मुसकरा दिया। तब तो उस ढीठ छोकरे को जैसे और भी हरी भूँडो मिल गयी और उसने जल्दी-जल्दी पीछे का दरवाजा खोलते हुए कहा—चल बे गफूरे, चन्द्र, करीमा, मैथ्यूज, विलियम....साहब तुम सबको मोटर पर घुमायेंगे....घुस, घुस, घुसता क्यों नहीं !

कोई आध घंटे बाद जब मैं उस पल्टन को मोटर पर घुमाने के बाद, निर्मल के साथ वापस शहर आ रहा था तो उस गुमनाम लड़के का (जो आखीर तक मेरे लिए गुमनाम रहा) निर्भीक, आश्वस्त चेहरा रह-रह कर मेरी आँखों के सामने घूम जाता और मुझे अच्छा मालूम होता।

मैंने कहा—यह एक चिनगारी है....

जमाना देखे हुए मन ने बाधा दी—और हजारों मन राख उसको इधर से उधर तक ढँके हुए है।

फगुनहट बह रहा था। जानता नहीं, शायद इसी से मन में प्राण का आवेग था। मैंने कहा—असल चिनगारी होगी तो राख को चीरकर ऊपर आयेगी....

नहीं, हमारे गाँव में जमुना नहीं थी, गंगा नहीं थी, सरयू नहीं थी, गोमती नहीं थी, गोदावरी नहीं थी। हमारे यहाँ तो बस एक छोटा-सा पहाड़ी नाला था जो बरसात में भदभदा उठता था और गर्मी में सूख जाता था, ऐसा सूख जाता था कि लड़के उस पर कबड्डी खेलते थे, मगर वही हमारी जमुना थी वही हमारी गंगा। उसमें हम तैरते थे, हमारी कागज की नावें तैरती थीं, हमारे सपने तैरते थे। उसके किनारे हम बछड़ों की तरह कुलेलें करते थे और सरपत की झाड़ियों में छिपते थे और उसकी तेज धार जहाँ नंगा शरीर पाती थी, एक महीन-सी लाल खरोंच छोड़ जाती थी, मगर उसका किसी को क्या गम था। चाँदनी रातों में हम पानी की लहरों में कैद चाँद को, पकड़ने की कोशिश करते मगर वह बड़ी मुश्किल से कभी किसी की अँगुली में आता और फिर चाँद को तो जहाँ जाना होता चला जाता हम घुटने बराबर बराबर पानी में खड़े होकर सरपत की तलवारों से युद्ध करते और अपनी तलवारें बिलकुल उसी तरह भाँजते जिस तरह

मुहर्रम के मौके पर नियामत कर्बला के मैदान में हसन हुसैन को तलवार भांजता था ।

इसी तरह शहर से बहुत दूर, जंगल की गोद में बसे हुए, अपने इस गाँव में, सरपत में छिपते, हुमंगा की लहरों के साथ उठते-गिरते, बन्दरों की तरह इस डाल से उस डाल पर कूदते, आम और इमली पर बेलों का निशाना साधते, खेतों से ऊँख चुराकर तोड़ते और उसके मीठे रस के साथ निपूती रजपतिया की गालियों के कसैले रस का मजा लेते, चन्दन की तरह ठंडी चाँदनी और आग की तरह गर्म चिलचिलाती धूप को अपनी मुहब्बत का बराबर हिस्सा देते, कबड्डी की बदबद बदबद और गुल्ली की सनसनाहट से अमराइयों को गुंजाते हुए हम बचपन से कैशोर्य में पहुँचे और हमने बड़े गर्व से अपने चेहरे पर उगते हुए पहले रोएँ देखे....और फिर कुछ बरम बोते और हमने जवानी की देहली पर पैर रखा ।

और हमारे साथ-साथ सत्ती भी बड़ी हुई । सत्ती ? सत्ती कौन ? तुम नहीं जानते । वह लगभग मेरी ही उम्र की थी । साल-छः महीने का फर्क रहा होगा । लंबी, छरहरो, साँवली-सी लड़की थी । जैसे बाँस की नयो टहनी । मेरे लिए वह इससे ज्यादा कुछ मतलब न रखती थी कि वह भी यहीं कहीं है और गिरने-पड़ने पर उसके पास बेखटके मरहम-पट्टी के लिए जाया जा सकता है । चोट लेकर घर जाने की मेरी हिम्मत न पड़ती थी, अम्मा बहुत बिगड़ती थीं । और अकसर ही मुझको या हमारी टोली में और किसी को चोट लगती रहती थी । इसलिए सत्ती की अहमियत हमारे बास्ते कम न थी लेकिन वह बस इतनी ही कि वह हमारी डाक्टर थी । हल्दी-बूने और पट्टी से वह हमेशा लैस रहती थी और फिर तो उसने अपने पिता से कहकर टिचराइडिन की एक बोतल भी मँगा ली थी जिससे हम सब को बहुत डर लगता था मगर सत्ती के डर के मारे हम लगवा लेते थे ।

यह कहना गलत होगा कि सत्ती को मुझसे या मुझे सत्ती से प्रेम था । जब मैं कोई चोट लगाकर उसके पास पहुँचता था तो मरहम-पट्टी के पहले वह मुझको खूब बुरी-बुरी बातें कहती थी । कहती थी—एक दिन तुम्हारी

टाँग टूट जायेगी तब पता चलेगा, लठिया टेककर चलोगे, मेरा क्या तुम्हीं भोगोगे, समझाती हूँ कि जरा हाथ-पैर बचाकर खेला करो, डाक्टर लोग आरी से पैर काट देते हैं। मेरे मामा पेड़ पर से गिर पड़े थे, उनका पैर आरी से काटा गया था। जब देखो तब, कहीं हाथ टूटा है तो कहीं पैर, चूल्हे में जाय ऐसा खेल। जाग्रो न अम्माँ के पास, यहाँ क्यों आते हो मेरा कहना नहीं मानोगे तो मैं भी तुम्हें कुछ नहीं कहूँगी। ऐसी ही बुरी-बुरी बातें सत्ती कहती थी। ऐसी ही बातें तो अम्माँ कहती थी, दीदी कहती थी। यह कैसा प्रेम है ? हो नहीं सकता। सत्ती तो ऐसी ही थी जैसी कोई छोटी बहन। पर वह मुझसे छोटी न थी और जब वह पुरखिनों की तरह मुझको नसीहत देने लग जाती तब तो उसकी उमर डेढ़ सौ बरस मालूम होती। उसका बस चलता था मुझको अपने पल्ले से बाँधकर रखती और उसकी यही बात मुझे सबसे ज्यादा नापसंद थी। वह मुझको जितना ही पकड़कर रखना चाहती मैं उतना ही ज्यादा उससे भागता और मैं जितना ही ज्यादा उससे भागता वह उतना ही ज्यादा मुझे अपने से बाँध लेना चाहती। मगर यह तो मैंने बाद को समझा, बहुत बाद को। उस वक्त तो बस इतना ही समझ में आता था कि सत्ती बड़ी अच्छी लड़की है मगर बहुत बुरी लड़की है। लेकिन वह अच्छी थी चाहे बुरी, उसका वहीं, हमसे तीन घर परे, होना मन को अच्छा लगता था। चाहे कई कई दिन उससे मिलने का संयोग न हो मगर यही क्या कम था कि वह पास ही थी और जब जी चाहे मैं उसके पास जा सकता था। मुझे अच्छी तरह गाद है कि चाहे दूर से ही हो—क्योंकि मुझे उसका इस तरह मुझे बच्चा बनाकर अपने आंचल में छुपाने की कोशिश करना बुरा लगता था और इसलिए और भी बुरा लगता था कि उससे अपने दोस्तों के बीच मेरी नाक कटती थी—वह मेरे ऊपर अपनी छाया किये रहती थी। मेरे ऊपर उसकी इतनी ममता क्यों थी इसको मैं आज तक समझ नहीं पाता लेकिन इतना सच है कि जब एक दिन वह हाथ मेरे ऊपर से उठ गया तो मैं इतना रोया था, इतना रोया था, कि मेरी आँखें सूज गयी थीं और उस दिन मैंने जाना था कि सत्ती को मैं अपने अनजाने में ही कितना

ज्यादा चाहने लगा था। और उस दिन मुझे उसके पहले के ऐसे एक दिन की याद आयी थी जब कि मैं कई दिन से सत्ती से नहीं मिला था और सत्ती मुझसे नाराज थी और फिर कबड्डी खेलते वक्त मेरे पैर में मोच आ गयी थी और मैं सेंक-बांध के लिए उसके पास पहुँचा था और उसने मुझसे कुछ नहीं कहा था और रोती जा रही थी और सेंक-बांध किये जा रही थी और उस वक्त अपनी चोट से भी ज्यादा जो चीज मुझे चोट पहुँचा रही थी वह यह थी कि आज सत्ती ने मुझको डाँटा क्यों नहीं, मुझसे कुछ कहा क्यों नहीं, क्यों ऐसी चुप चुप है....

मगर वह सब बातें पुरानी हो गयीं। जब तक मैं यह समझने काबिल होऊँ कि सत्ती को मैं प्यार करता हूँ या नहीं और सत्ती मुझको प्यार करती है या नहीं उसकी मँगनी हो गयी और फिर एक दिन डोली पर सवार होकर वह अपने दूल्हे के साथ चली गयी। जाते समय उसने चंपा से कहकर मुझको बुलवाया मगर मैं तो उधर पीपल के नीचे खड़ा अपने फड़कते हुए होंठों को काबू में करने की कोशिश कर रहा था, मेरी हिम्मत न थी कि उस समय सत्ती के सामने जा सकता। इतना बड़ा, पहाड़-सा लड़का रो रहा है ! सत्ती तो चली जायगी, बाद में सब मेरी हँसी करेंगे। नहीं मैं नहीं जाऊँगा। और मैं उसी तरह गुमसुम खड़ा रहा, मेरे गले में वैसे ही काँटा-सा पड़ा रहा, मेरी तबीयत उसी तरह बिलखती रही और सत्ती एक अनजान आदमी के साथ चली गयी जिसकी शकल न तो मैंने पहले देखी थी और न उसी ने।

चोट-चपेट में मरहम-पट्टी करने से ज्यादा कोई जगह सत्ती की मेरी रोजमर्रा जिंदगी में न थी, यह बात मैं बारबार कह रहा हूँ और शायद इसलिए कह रहा हूँ कि मैं समझना चाहता हूँ कि तब फिर क्या वजह थी कि जब वह चली गयी तो मुझे इतना सूनापन मालूम हुआ।

मैं खुद नहीं जानता कि यह सब कैसे हुआ मगर बात सच है कि उधर सत्ती गयी और इधर मैं एक दूसरा ही आदमी हो गया। कि जैसे आँसुओं की उस बरसात ने मेरे भीतर कुछ नये अंकुर उगा दिये हों। पहले जहाँ अकेल होना मेरे नजदीक मौत का दूसरा नाम था वहाँ अब मुझे यह अकेलापन

माने लगा और अकसर मैं अपने दोस्तों से अलग कहीं किसी पेड़ के तने पर या टीले पर बैठा दिखाई देने लगा। वह लोग मुझे खेलने के लिए बुलाते तो मैं अकसर कोई बहाना बनाकर बच निकलता और अगर कभी पकड़ ही जाता तो खेलता मगर मन कहीं और ही उड़ता रहता। नहीं सत्ती के पास नहीं, मगर कहीं और, दूर किसी इलाके में। साथियों ने इस पर से मेरा मजाक भी बनाया। खेल में काहे को जी लगेगा ! दिल तो कोई अपने आँचल में बाँधकर ले गया ! अरे भाई, मुहब्बत चीज ही ऐसी है ! जिसको यह बीमारी होती है वही इसका हाल जानता है, हम तुम क्या जानें !.... किशनू से तो एक दिन इसी बात पर मेरी हाथा-पाई तक हो गयी। बात भी उसने लगती हुई कही थी। कोई तो यहाँ बिरह में गरम-गरम साँसें छोड़ रहा है और कोई अपने दूल्हे के साथ....

सत्ती मुझे भुला बैठी है, यह संकेत भी मुझे असह्य था।

एक अजीब सूनापन था जिसे भरने के लिये मुझे आदमियों की नहीं और भी सूनेपन की तलाश थी। धीरे-धीरे मेरे साथियों ने मुझको बेकार जानकर मेरा साथ छोड़ दिया और यह बात सच है कि अब मैं उनके ताश और चौपड़ के लिये बेकार था। मुझे अब अगर कहीं आराम मिलता था तो वह दूर-दूर तक फैले हुए खुले मैदानों में, किसी कुएँ की सूनी जगत पर, कहीं किसी पेड़ के नीचे जहाँ आसपास कोई न हो—या हुमंगा के किनारे जिसके साथ मेरी न जाने कितनी स्मृतियाँ जुड़ी हुई थीं। अब मुझे इन्हीं वीरान जगहों में अच्छा मालूम होता। और हर चीज मुझे अपने ही उदास रंग में रंगी नजर आती—नदी का किनारा, चाँद, रात की ऊँघते हुए आम और इमली और नीम और जामुन के पेड़, छुरी की तरह पैनी कोयल की सदा, आकाश का नीला विस्तार, चरागाहों का निस्तब्ध शून्य, बंसवारी, बैल के गले में बँधी हुई घंटी की आवाज, जब-तब किसी नन्हीं सी लड़की का गौना जो आज घूँघट काढ़े है और अभी कल तक कछौटा बाँधे महुआ बीनती फिरती थी, ताल में पड़ी सनई, झनकारती हुई झिल्ली।

....और मुझे खुद ही पता नहीं कि कब किस रोज मैंने अपने इस सूनेपन को कम करने के लिये पहली बार एक गीत गाया मगर इतना याद है कि उस गीत से मेरा जो नहीं भरा और मुझे ऐसा लगता रहा कि यह गीत किसी और का है, इसमें मेरे दिल की बात है सही मगर पूरी बात नहीं है और वह पूरी बात मेरे सिवा और कौन कह सकता है। और तब मैंने अपना एक गीत बनाया, टूटा-फूटा गीत, मगर वह गीत मेरा था और उसमें मेरे दिल की बात थी। और इसी तरह अब जब भी मेरा दिल मसोसता मैं दर्द को भूलने के लिये या शायद और भी तेज करने के लिये यों ही टूटे-फूटे गीत बनाने लगा।

....और मैं....मगर वह बात आगे की है और उसे आगे कहूँगा। मैं नहीं जानता मेरे गीतों में क्या था, क्या नहीं था। यह समझने की न तो मेरे पास शक्ति थी और न शायद जरूरत। उनसे मेरा दिल बहलता है, यही मेरे लिये बहुत था। दूसरों की मुझे चिन्ता न थी। लेकिन हाँ अगर मेरी टोली का कोई लडका आ जाता तो उसके सामने गाने में मुझे झिझक न मालूम होती और ऐसे मौकों पर बहुत बार मैंने किशनू—वही किशनू जिससे एक बार मेरी मारपीट हुई थी—और बूटे और दिलीप और लल्लन को आँखों को भीगते देखा। और तभी मैंने यह बात भी देखी थी कि वही लोग जो शुरू में मेरा मजाक उड़ाते थे अब मुझे फिर वही पहले जैसा प्यार देने लगे थे और उन्हीं में से एक, शायद दिलीप, मुझे एक बाबाजी के पास ले गया था जो हमारे गाँव के बाहर एक गुमटी में रहते थे। सन्यास लेने के पहले वह बहुत बड़े गर्वये थे और अब तो बस भजन गाते थे लेकिन पचीसों बरस का अभ्यास जो कण्ठ में बैठा हुआ था कहाँ जाता। अब भी उनके स्वर में ऐसी शक्ति और इतनी मिठास थी कि उनके पास से हटने को जी न चाहता था। लेकिन अब संगीत के अभ्यास में उनको उतनी रुचि न रह गई

थी। इसलिये पहले तो वह मुझे सिखाने को तैयार न हुए लेकिन कुछ दिन बाद जब मैं फिर उनसे मिला तो वह मुझसे बड़े प्यार से मिले, मुझे अपने पास बैठाया, मुझसे गाने के लिये कहा और मेरे स्वर में उनको कुछ ऐसी बात मिली कि वह न केवल मुझको सिखाने के लिये राजी हो गये बल्कि खुद ही जाकर कहीं से एक तम्बूरा भी लेते आये। और इस तरह मेरी संगीत शिक्षा प्रारम्भ हुई।

एक दिन मैं गाँव के बाहर एक कुएँ की सूनी जगह पर बैठा हुआ गा रहा था। मुझे अपने आसपास किसी चीज का पता नहीं था। मेरी तन्द्रा टूटी तो मैंने अपने से थोड़ी दूरी पर तीन घुड़सवारों को बैठे पाया। घोड़े उनके बंधे हुए थे और वह लोग इत्मीनान से बैठे मेरा गाना सुन रहे थे। मुझे बड़ी शर्म मालूम हुई। पता नहीं मैं कितनी देर से गा रहा था और यह लोग कब आ गये थे। कौन लोग हैं ये, इन्हें कहाँ जाना है, यह सब कुछ भी मुझे मालूम न था।

तभी उनमें से एक ने, जो उनका सरदार मालूम होता था, कहा—  
कितना मीठा गला है तुम्हारा !

मैं क्या जवाब देता ? मैं तो शर्म से और गड़ गया। तब उस आदमी ने कहा—तुम कौन हो ? मैंने अपना नाम बताया और बताया कि मैं इसी गाँव का रहने वाला हूँ। तब उसने पूछा—क्या काम करते हो ? इसका मेरे पास कोई जवाब न था क्योंकि मैं कोई काम नहीं करता था और इसी बात के लिये घर में मुझको बुरा-भला कहा जाता था। सब कहते थे लड़का बहेतू निकल गया। कुछ नहीं करता। मैंने कहा—कुछ नहीं करता। इस पर उन सबों को बड़ी हँसी आई। फिर उनमें से एक ने पूछा—काम करोगे ? इससे अच्छी बात और क्या हो सकती थी। लेकिन क्या काम, कैसा काम, यह सब कुछ भी मेरी समझ में नहीं आया। मैं बगलोल की तरह उन लोगों का मुँह देखता रहा। तब उस आदमी ने अपनी बात साफ करते हुए कहा—आप चंदनपुर के कुँअर साहब हैं। तुम्हारा गाना कुँअर साहब को बहुत पसंद आया है। कुँअर साहब को गाना गाकर सुनाना, यही तुम्हारा काम होगा।

गाना गाना भी काम हो सकता है, यह बात ही मुझको बहुत अनोखी मालूम हुई मगर अच्छी भी मालूम हुई। मैंने सिर हिलाकर अपनी स्वीकृति जतलाई। यह बात शायद उस आदमी को पसन्द नहीं आई। उसने कहा—मुँह से बोलो। मैंने कहा—हाँ। उसने कहा—तो फिर चलो। मैंने कहा—वाह, ऐसे कैसे चल सकता हूँ। बप्पा से तो पूछ लूँ। मेरी यह बात भी उस आदमी को पसन्द नहीं आयी और उसकी त्योंरी पर मुझे हल्का सा बल दिखाई दिया। मगर उस आदमी ने जिसका परिचय कुँभर साहब करके कराया गया था, कहा—ठीक तो बात है। बिना अपने पिता से पूछे वह कैसे जा सकता है।

इसके बाद उन्होंने मुझसे कहा कि पिता जी से आज्ञा लेकर चले आना और चले गये।

कहने की जरूरत नहीं कि इस खबर से बप्पा को बड़ी खुशी हुई और हैरानी भी कुछ कम नहीं हुई कि जिस लड़के को उन्होंने बिल्कुल बेकार समझ रखा था उसको चन्दनपुर के कुँभर साहब अपने साथ रहने के लिए बुला रहे हैं।

....इसके पाँचवें दिन मैं चन्दनपुर पहुँच गया। वहाँ मेरी बड़ी आवा-भगत हुई।

पहुँचते ही कुँभर साहब ने मुस्कराते हुए पूछा—आ गए ? ...और इधर-उधर की बहुत-सी बातें कीं। उसी वक्त उनका खास दर्जी बुलाया गया और मेरे लिए अच्छे-अच्छे रेशमी कपड़ों का आर्डर दिया गया जो सब शाम होते-होते सिलकर आ गये।

अच्छी तरह नहा-धोकर जब मैंने अपने नये कपड़े पहने और आईने में अपनी शकल देखी तो एक बार खुद को ही न पहचान सका। इसके पहले मैंने जाना ही न था कि कपड़े से आदमी की शकल इतनी ज्यादा बदल जाती है। देखने में मैं पहले भी बुरा न था। गोरा रंग, लंबा कद, चौड़ा माथा, चौड़ा सीना, मजबूत हाथ पैर। मगर इस सबके बाद भी जैसे एक राख-सी

पड़ी हुई थी जो अब चन्दनपुर पहुँचकर साफ हो गई और उस राख के नीचे से मेरा कुंदन की तरह दमकता हुआ रूप निकल आया। और जब मैं कुँभर साहब के पास पहुँचा तो वह भी मुझको देखकर बहुत प्रसन्न हुए—जिस आदमी को चौबीसों घण्टे उनके साथ रहना था उसे शकल-सूरत, कपड़े-लत्ते से भी ठीक होना ही चाहिए वरना वह कैसे कुँभर साहब के साथ रह सकता है। लेकिन अब इस नये रूप में मुझको देखकर वह काफी संतुष्ट जान पड़ते थे।

उन्होंने नौकर को आवाज दी और नौकर मुझको मेरे घर की तरफ ले गया। घर की सजावट देखकर मेरा तो होश ठिकाने नहीं रहा। सभी कमरों में एक से एक अच्छी कुर्सी, मेज, पलंग, तकिया, गावतकिया, दरवाजों पर पर्दे, फर्श पर दरी, कालीन। मैंने तो ऐसे घर में रहने का सपना भी जिन्दगी में नहीं देखा था। मैं तो इसी चिन्ता में पड़ गया कि यहाँ पर मैं रह भी पाऊँगा या नहीं। हर समय मुझे यही फिक्र लगी रहेगी कि कहीं कोई फर्श तो नहीं गन्दा हो रहा है, किसी पलंग को खरोंच तो नहीं आ गई, कुँभर साहब क्या कहेंगे—मैं तो इसी चिन्ता में मर जाऊँगा। इससे अच्छा तो यही होता कि मुझको मामूली सा एक कमरा दे देते। मुँह देखकर बीड़ा देनेवाली बात ठीक है। मैं तो पागल हो जाऊँगा इस घर में। मैं तो यही नहीं समझ पाऊँगा कि कैसे उठूँ, कैसे बैठूँ और नौकर सब मेरा तमाशा देखेंगे। कुँभर साहब पता नहीं कहाँ से एक जंगली हूश पकड़ लाये हैं। उसे किसी बात का पता ही नहीं। कभी रहा हो इन सब चीजों के बीच में, तब तो इनका हाल जाने। देखना एक दिन ऐसा मचमचाकर कुर्सी पर बैठेगा कि बेचारी चीं बोल जायेगी। बदन तौलकर बैठना आये तब तो ! जनम तो बीता धूल-मिट्टी में अब यहाँ सब राजसी ठाठ। कुँभर साहब को भी एक से एक दिल्लगी सूझती है। ....मेरे जी में तो आया कि वहाँ से चिल्ला पड़ूँ—तुम बिल्कुल ठीक कहते हो भाई लेकिन मैंने कब कुँभर साहब से कहा था कि यह सब करो। मैं तो आप ही मरा जा रहा हूँ। मगर मैंने जब कुँभर साहब से कहा कि आप ने मेरे लिए यह सब क्यों किया, मैं तो गँवार आदमी

हैं। तो उन्होंने इस तरह मेरी तरफ देखा कि उनके बिना मुँह से कुछ बोले ही बात साफ हो गई और मैं समझ गया कि वह सब तैयारी कुँअर साहब ने मेरे खयाल से नहीं अपने खयाल से की थी, इसलिये नहीं कि मैं मैं था बल्कि इसलिये कि मैं कुँअर साहब का मुसाहिब था, मुझको भी एक ढंग से ही रहना होगा वरना उसमें कुँअर साहब की हेठी होगी। बात ठीक भी थी और जल्दी ही मेरी समझ में आ गई और मैंने गाने का खयाल छोड़कर सबसे पहले इसी चीज की ओर ध्यान दिया कि जल्दी ही मैं इस सब अदब-कायदे को, उठने-बैठने चलने-फिरने बात करने के ढंग को इतनी अच्छी तरह जान जाऊँ कि फिर कोई मुझे गँवार न कह सके।

....और भगवान् की दया से चार ही छः महीने में मुझको बहुत कुछ आ गया। अब किसी भी हालत में मुझको नक्कू बनने का डर न था। कुँअर साहब भी मुझसे बहुत प्रसन्न थे। नेक आदमी थे, मेरे हर आराम का खयाल रखते थे। मुझको किसी चीज की कमी न थी, इशारा करने मात्र से वह हाजिर कर दी जाती। एक कलाकार की इज्जत जैसी होनी चाहिए वैसी ही मेरी होती थी। कुँअर साहब के बात-व्यवहार में कहीं कोई चूक न होती थी। इस तरह मेरी जिन्दगी बड़े आराम से कटने लगी। काम ही क्या था, बस जब-तब कुँअर साहब को गाकर सुनाना। चौबीसों घण्टे दाँस्तों की महफिलें गर्म रहतीं, कभी गप्प की महफिल है तो कभी ताश की महफिल है तो कभी संगीत की महफिल है। इसी सब में कुँअर साहब का दिन कटता था और इसी में अब मेरे दिन कटने लगे। चारों तरफ चैन ही चैन था, अच्छा से अच्छा खाना, अच्छे से अच्छे कपड़े पहनना, और इस गद्दे से उस गद्दे पर लोट लगाना। और बस दरबारदारी, जिसका ढंग अब मुझको भी खूब आ गया था—और कैसे न आता जब हर साँस के साथ यही दरबारदारी, यही ठकुरसुहाती मेरे खून में घुलती जा रही थी। उस छोटी-सी दुनिया में जिन्दा रहने का यही उसूल था। एक तरफ कुँअर साहब की भवों की कमान का चढ़ना और उतरना देखते रहना और दूसरी तरफ दोस्त का गला काटने की तदबोर....ऐसे में सौ बीमारियों की एक दवा, ठकुरसुहाती। यही सबसे

बड़ा काम था । उससे कही घटकर थी संगीत की साधना । चलने को मेरा रियाज चल रहा था लेकिन अब उसमें कभी कभी कुछ ढिलाई भी होने लगी थी । यही सारा काम था, सबेरे का रियाज और सबेरे की संगीत गोष्ठी में गाना । शाम को महफ़िल में अकसर शहर से कोई बाईजी आती थीं कभी कोई कभी कोई । कभी कभी उसमें भी कुँअर साहब मुझसे गाने के लिए कह देते थे लेकिन ज्यादा नहीं । और जब मैं अच्छा गाता तो कुँअर साहब के चेहरे पर प्रसन्नता तो होती ही गर्व उससे भी ज्यादा होता कि देखो हम संगीत के कैसे गुनी हैं, हमारा अपना गवैया कितना अच्छा है ! लेकिन उससे मुझ को क्या, इसी बात के लिए तो मैं उनके यहाँ नौकर था, इसी बात के लिए तो वह मेरे ऊपर इतना खर्च कर रहे थे । लेकिन खैर, मेरे दिन बहुत अच्छे कट रहे थे । मेरे गाने की धूम भी काफी थी ।

मुझको चंदनपुर आये एक बरस से ऊपर हो गया था और इतने दिनों में एक बार भी मैं अपने घर नहीं जा पाया था । दूरी कहो तो मुश्किल से पच्चीस मील लेकिन कुँअर साहब के पास से छुट्टी मिलना ही तो टेढ़ी खीर है ।

मैंने कुँवर साहब से कहा—इस बार होली पर मैं घर जाना चाहता हूँ ।

कुँअर साहब थोड़ा मुँह बनाकर बोले—जाना चाहते हो तो जाओ मगर वक्त तुमने बुरा चुना ।

मैंने कहा—मैं ज़िद न करता कुँवर साहब पर बात यह है कि घर में मेरे बुढ़े माता-पिता हैं और मुझे ऐसी खबर मिली है कि पिता जी का शरीर बहुत ठीक नहीं है । मुझे खुद ही जाना बुरा लग रहा है पर इस बार तो आप अनुमति दे ही दें....

....और मैं अपने घर गोपालपुर आ गया । उस समय गोपालपुर का क्या कहना, चारों ओर होली की बहार थी । जगह जगह फाग की तानें उड़ रही थीं और एक दूसरे से बाजी ले जाने के फेर में सीना फाड़कर गा रहा था । मैं पहुँच गया तो लोगों में और भी जोश आ गया । मेरी टोली-बाले तो और भी फड़क उठे—बिन्दा आ गया ! प्यार तो मुझे पहले भी मिलता था, अब इज्जत भी मिलने लगी । चंदनपुर के कुँअर साहब के

यहाँ होना कोई मामूली बात थी ?

....मगर मैं क्या कहूँ, मेरे लिए तो इस बार गोपालपुर आना बहुत बड़ी निराशा का कारण हुआ। मेरे गाने की सबने तारीफ की लेकिन मेरी आँखों से यह बात छिपी न रही कि यह तारीफ दिल से नहीं बस गले से निकल रही है। कहाँ तो मैं अपने गाने के नशे में भूला हुआ था और कहाँ मुझे इस कठोर सत्य का सामना करना पड़ा कि मेरे गाने में अब वह दिल को पिघला देनेवाली बात नहीं है। पहले मेरे गाने को सुनकर कोई तारीफ का एक शब्द न कहता था लेकिन उसकी ज़रूरत न थी क्योंकि लोगों की आँखों से बहते हुए आँसू और उनके चेहरे पर लिखी हुई उदासी, उनका वह झूमना—कि जैसे बीन के स्वर पर साँप झूमे—और संगीत की लहरों में डूबना और खो जाना सब भेद खोल देता था कि गाने ने कितने गहरे जाकर चोट की है। लेकिन इस बार वह सब कहाँ ! कि जैसे आवाज बस मेरे गले से निकली हो और उनके कान तक पहुँची हो ! कि जैसे दिल को टटोलने की, दिल को झंझोड़ने की, दिल में भूचाल पैदा करने की ताकत उसमें से निकल गयी हो ! कि जैसे प्राण निकल गया हो और निर्जीव शरीर बच रहा हो ! इस को लेकर मैं क्या करूँ !

मैं दस दिन की छुट्टी लेकर आया था और तीन ही दिन में भाग खड़ा हुआ। जी कैसे लगता ! मगर जी तो चंदनपुर पहुँचकर भी नहीं लगा। यह तो मेरे भीतर के गायक की मृत्यु थी अर्थात् मेरी मृत्यु थी। कहाँ मुझे चैन न था। कुँभर साहब ने दो एक बार इसके बारे में पूछा भी—बड़े खोये खोये-से रहते हो, क्या बात है ? घर की याद आती है ? घर में सब मजे में हैं न ? क्या बात है, क्यों इतने उदास रहते हो ? यहाँ किसी ने कुछ कह दिया ?

एक दो बार उन्होंने ठिठोली भी की—गाँव की किसी जादूगरनी को दिल तो नहीं दे आये ?

मगर मैं क्या जवाब देता इन सवालों का । रोग तो मेरा कुछ और था । और रोग था क्या, यह खुद मुझे पता न था, मैं कुँअर साहब से कहता भी क्या । पर रोग कुछ भी हो, मुझे किसी करवट आराम न मिलता था । अपने गाने को लेकर मेरे दिल में क्या क्या उमंगें न थीं और उन सबों का एकब्यक इस तरह गला घुट जायेगा, यह मैंने कब सोचा था । पीड़ा कैसे न होती ।

मैं बरामदे में अपने बिस्तर पर पड़ा करवटें बदल रहा था । चाँदनी रात थी । सब तरफ मद्धिम सी चाँदनी छायी हुई थी । मेरे बँगले के आसपास कहीं कोई न था । रात के इस पहर में स्वभावतः गहरी निस्तब्धता थी । बस कभी कभी किसी उल्लूके बोलने की आवाज सुनायी दे जाती थी । दिन भर की भीड़भाड़ के बाद यों शायद यह सब मुझे अच्छा मालूम होता मगर इस वक्त तो मुझे कुछ भी अच्छा नहीं लग रहा था । मेरे दिमाग पर तो न जाने कैसी कैसी चोटें पड़ रही थीं और सर चकरा रहा था । बाहर तो कुछ चाँदनी भी थी, मेरे भीतर तो घुप्प अंधेरा था । कहीं राह नहीं मिल रही थी और उसी राह के लिए मन छटपटा रहा था । पता नहीं ऐसे मे ही कब मेरी आँख लग गयी....

....और फिर पता नहीं कितनी देर मैं सोया । बस यह पता है कि मैं एकाएक डर कर जाग गया था और परेशान होकर इधर उधर ताक रहा था कि यह आवाज कहाँ से आयी । मुझे साफ सुनायी पड़ा कि जैसे इमली तले जो कुश्नी था उसमें से आवाज आयी—भागो भागो यहाँ से भागो.... मौत से बचना चाहते हो तो भागो, नहीं एक दिन तुम भी मेरी तरह इसी कुएँ में शरण पाओगे ! मैं भी कभी उसी जगह पर था जहाँ आज तुम हो !

मेरे कान में अब भी ये शब्द बज रहे थे और डर के मारे मेरा बुरा हाल था । कहना न होगा कि बाकी रात मैंने जागकर आँखों आँखों में ही काट दी और तय किया कि सबेरे इस मामले का पता लगाऊँगा ।

.. सबेरे उठकर मैंने कुँवर साहब से, दरबार के पुराने मुलाजिमों से पता लगाना चाहा मगर सब मेरी बात सुनकर हँस दिये । मैंने भी समझा कि

यह मेरे ही मन का भूत है ।

लेकिन फिर अगले रोज यही हुआ....और फिर अगले रोज यही हुआ.... और फिर अगले रोज....यहाँ तक कि मेरे लिए वहाँ रहना असंभव हो गया और मेरा इंतजाम कुँअर साहब के बगल के एक कमरे में कर दिया गया ।

मगर उस भयानक आवाज ने वहाँ भी मेरा पीछा नहीं छोड़ा । दीवार घड़ी पर मेरी नजर गयी । डेढ़ बजा था ! कान में वह आवाज अब भी गूँज रही थी—समय रहते भाग जा मेरे बच्चे, नहीं एक दिन तू भी यहीं इसी कुएँ में आयेगा, मैं जानता हूँ । यह जगह हमारे लिए नहीं है । खुली हवा में जा जहाँ तुझ पर कुँअर साहब का नहीं खुले आसमान का साया हो, जहाँ डाह का राज नहीं है और चिड़ियाँ दोस्ती का राग गानी हैं, इस बन्द बन्द घुटी घुटी हवा में तो यों ही तालू सूखता है, तू गा नहीं सकता । भाग यहाँ से....

आम को जैसे लू मार जाती है वैसा ही हाल अब मेरा था । मैंने किसी से अब कुछ कहना छोड़ दिया क्योंकि सब मेरी हँसी ही तो उड़ाते लेकिन इस आवाज का रहस्य मेरा पीछा करता रहा । मैंने बाग के एक बुड़े माली, सबसे बुड़े माली से भी पूछा, जो अब काम नहीं करता था, जिसकी जगह अब उसका पोता काम करता था, लेकिन वह भी ज्यादा कुछ नहीं बतला सका । यह भी नहीं कि वह कुआँ कब बन्द किया गया और क्यों बंद किया गया और किसने बंद करवाया । मगर वह आवाज जिसकी भी थी, चाहे कुएँ में बन्द मेरे किसी पूर्वज की आत्मा की चाहे मेरी अपनी आत्मा की, वह मेरा पीछा करती ही रही और हुमंगा की उद्दाम लहरें मुझे बुलाती रही, जिस मिट्टी में लोटकर मैं बड़ा हुआ था वहाँ की खुली चरागाहों का दिगंतव्यापी विस्तार अपना आंचल फैलाकर मुझे इशारे करता रहा, मेरे दोस्तों की टोली मुझे बुलाती रही, वह मेरा आत्मीय, निःस्वन, निस्तब्ध सन्नाटा मेरे कान में कुछ कहता रहा, मेरे तारे मुझे कनखियाँ मारते रहे, मेरी चिड़ियाँ बेसब्री से अपनी चोंच में मेरे कुर्ते का दामन पकड़कर मुझे खाँचती रहीं, बाँसों के जिस भुरमुट को मैंने कितनी ही बार गाकर सुनाया था वह अब जैसे सिमट कर मेरे सीने में ही आ गया था और वहीं सुलग रहा था

और इन सबकी धूल और चंदन और गंध में रची हुई सत्ती मुझसे अपने दर्द की कहानी कह रही थी—या शायद मैं उससे अपने दर्द की कहानी कह रहा था जो कि एक ही बात है....

....और मैं उस आवाज का रहस्य तो नहीं पता लगा पाया मगर हाँ, इन सब दूसरी आवाजों को मैंने सुना और पहचाना और समझा कि वह गान जिसे मैं अपना गान कहता हूँ अकेले मेरा गान नहीं है, उसमें मेरे ये सब बंधु और आत्मीय आकर न जाने किस जादू से अपना स्वर मिला जाते हैं जिसका पता उस समय नहीं चलता—वैसे ही जैसे सत्ती के प्रति अपने प्यार का पता मुझे तब चला जब कि वह सपने की तरह एक रोज मेरी जिन्दगी से दूर चली गयी ।

---

नींद में ही जैसे मैंने माया को आवाज सुनी और चौंककर मेरी आँख खुल गयी। बगल के पलंग पर नजर गयी, माया नहीं थी। आज इतने सबेरे माया कैसे उठ गयी, कुछ बात समझ में नहीं आयी।

आवाज दरवाजे पर से आयी थी। मैं हड़बड़ाकर उठा और करीब पहुँचा तो क्या देखता हूँ कि माया दरवाजा खोले खड़ी है और बाहर के बरामदे में एक दुबला काला आदमी, मैंभोले कद का, सिर्फ एक जरा सी लुगड़ी लपेटे, बाकी सब धड़ और टाँगें नंगी, उकड़ूँ बैठा था। माया दरवाजा खोलने आयी तो आज सबसे पहले इसी आदमी के दर्शन हुए। मैंने भी देखा और मुझे भी गुस्सा आया कि यह मरदूद यहाँ कैसे आ मरा। मैंने डपटकर पूछा—कौन हो तुम ? यहाँ कैसे आये ?

दोनों ही सवालों का जवाब आसान था— मैं एक गरीब भिखमंगा हूँ जिसके सर पर छप्पर नहीं है। जी नहीं, शिकरम नहीं ली, यों ही चलकर आ गया। मगर उसने कोई जवाब

गरीब भिखमंगा

नहीं दिया, जो कि मुझे और भी खला और मैंने अपनी आवाज में और भी तेजी लाते हुए कहा—बोलता क्यों नहीं ? बहरा है ?

फिर भी कोई जवाब नहीं । जवाब हो भी क्या सकता था अगर वह मचमुच बहरा था ! मगर कौन कह सकता है कि वह बहरा था ही, आजकल इस तरह के बने हुए आदमी....

लेकिन वाक्य पूरा करने के पहले ही मुझे लग गया कि यह मैं गलत बात कर रहा हूँ । बने हुए आदमी दिन के वक्त भेस बनाकर भोख माँगा करते हैं, इस तरह रात को किसी के बरामदे में आकर सो नहीं जाते, जाड़े की ऐसी रात में....और मेरा ध्यान उसके ओढ़ने-बिछौने पर गया....बिछौना निखहरी जमीन और ओढ़ना टाट का एक घिसा हुआ पौन गज का टुकड़ा, (और हाँ एक चिक जो उसने हमारे दरवाजे से उतारकर अपने ऊपर डाल ली थी ) उस वक्त जब कि एक गद्दे और एक लिहाफ से हमारा काम ठीक से नहीं चलता और जो होता है कि और कुछ ओढ़ लें ! कैसे कटो होगी इसकी रात ? नींद तो क्या आयी होगी ? दाँत बजते रहे होंगे, जाँघों में हाथ डाले राम का नाम जपता पड़ा रहा होगा या शायद टहल टहलकर ही रात काटो हो, किसने देखा....और किसको दिखाने के लिए इसने यह शकल बनायी है, इन ठंडी सूनी दीवारों को ? बने हुए आदमी....यह बना हुआ आदमी है ? और अपनी बात खुद मुझे सालने लगी ।

मगर उस आदमी को इस समय की मेरी आत्म-पीड़ा से भी उतना ही कम प्रयोजन था जितना दो मिनट पहले की कठोरता से । ठिठुरते हुए हाथों से चिक को दरवाजे पर टाँगने के बाद वह अब कच्चे पपीते के बीज जो तमाम बिखरे हुए थे बटोरकर एक जगह कर रहा था । लगता है उसने हमारे ही पेड़ से एक पपीता तोड़कर उससे अपनी भूख बुझाने की कोशिश की थी लेकिन अभी शायद वह पूरी तरह जानवर नहीं बन पाया था इसी-लिए पूरा पपीता खा नहीं सका, आधा टुकड़ा किसी तरह नोच नाच कर खाग़्र था और आधा ज्यों का त्यों पड़ा था और बीज सब इधर-उधर छिटके हुए थे जिन्हें वह बटोर रहा था ।

पता नहीं क्यों उसे इस बात का खयाल आया। जिस का घर है, वह सफाई करवा ही लेगा। मगर नहीं, वह जानवर नहीं है कि सफाई का उसे कोई खयाल न हो। जहाँ उसने रात गुजारी है, जहाँ से अब वह जा रहा है, उस जगह को गंदा करके वह नहीं जाना चाहता। मैं कुछ नहीं कह सकता कि उसके दिल में क्या बात थी। हाँ मकता है बस इतनी बात रही हो कि यह सब गंदगी साफ कर दो नहीं साहब नाराज होंगे या शायद अपने नौकर को बुलाकर दस-पाँच लात-धूसे लगवा दें। जो भी बात उसके दिल में आयी हो और जो भी उसके पहले के तजुबे रहे हों, मैं कुछ भी नहीं जानता। मैंने बस इतना देखा कि वह जाड़े के मारे ठिठुरती हुई उँगलियों से जैसे तैसे गंदगी इकट्ठी कर रहा है। पता नहीं कैसे-कैसे लोगों से इसका पाला पड़ता होगा, क्या क्या इस पर बीतती होगी, दुनिया को यह कैसा खयाल करता होगा....आज इंसान जिम तरह तरक्की करता; आ हज़ारों साल पीछे पहुँच गया है जबकि वह पहाड़ की गुफाओं और जंगलों में रहता था और इसी तरह नंगा घूमता था और शायद इसी तरह कच्चे पपीतों पर बसर करता था, इस तरक्की में इस आदमी का क्या हाथ है? और मुझे पता नहीं क्यों उस पर वेह्द तरस आया—इस बात पर कि दुनिया में उसका कोई न था, उसके पास कहीं अपनी एक नन्हीं सी कोठरी भी न थी और बस इसी आसमान के छप्पर के नीचे उसकी रातें बीतती थी, और यह कि इस ठिठुरती हुई सर्दी में उसके तन पर बस एक लुगड़ी थी और वह गाय-बैल की तरह कच्चा पपीता खा रहा था—मगर इन सब बातों से ज्यादा इस बात पर कि उसने एक शब्द भी नहीं कहा। यह नहीं कि वह गीता का प्रवचन देने लग जाता या आल्हा सुनाने लग जाता मगर फिर भी कुछ तो कह सकता था, गिड़गिड़ा सकता था, रो सकता था। मगर उसने तो कुछ भी नहीं किया, बस उठकर बैठ गया और अपने चलने की तैयारी में जगह की सफाई करने लगा, न कोई शिकायत की और न कोई फरियाद। कैसा अजीब आदमी है। इसने हमसे अगर खाना खिलाने की तलब की होती तो क्या हम उ?

खाना न खिला सकते थे या कहा होता तो तनढांकने के लिए दो-एक कपड़ा न दे सकते थे। मगर अब शायद उसे इतनी भी उम्मीद बाकी न रही। अब तो शायद वह मिर्फ इसलिए जो रहा है कि मौत नहीं आती और अगर किना तरह न आया तो एक रोज वह खुद जाकर हाथ पकड़कर उसे खींच लायेगा और फिर उमोघिसे हुए टाट के कफन में लपेटकर कोई मेहतर उसे घसीटकर कहीं फेंक आयेगा....

कहानी कहने में जितनी देर लगती है, वाक्ये में उतनी देर नहीं लगती। बीज अब उसने सब इकट्ठा कर लिये थे और उन्हें फेंकने बाहर जा रहा था। इस वक्त मैंने उसे बतलाना जरूरी समझा कि इस तरह किसी के घर में घुस आना ठीक नहीं होता, अब फिर कभी मत आना। मगर अपने ही कानों में मुझे अपने ये शब्द खोखले सुनायी पड़े।

वह लौटा और अपना टाट उठाकर चला गया और मैं हक्का-बक्का उसे देखता रहा। मैं कुछ समझ नहीं पा रहा था कि मुझे क्या करना चाहिए। तब तक वह काफी दूर चला गया था। मैंने माया से कहा—एक कुर्ता-पाजामा तो दे देते उसे.... और हाँ, एक रुपया भी लेती आना.... और तब मैंने भोर के धुंधलके में उस आदमी को आवाजें दो—ओ आदमी.... ओ आदमी.... क्योंकि उसका नाम मुझे नहीं मालूम था। वह लौट पड़ा। माया ने लाकर एक कुर्ता पाजामा और एक रुपया मुझे दिया और मैंने बाहर निकलकर दोनों चीजें उसके हाथ में दे दीं। तब भी उसने कुछ नहीं कहा, कुछ भी नहीं, और जैसे आया था वैसे ही चला गया। मैं कुछ देर तक उसे देखता रहा और फिर पता नहीं क्यों मुझे बहुत जोर से रुलाई छूटी और मुझे अपनी आँखें नम होती मालूम हुई और फिर अच्छी तरह आँसू बहने लगे। मुझे खुद अपनी इस हालत पर बड़ी हैरानी थी क्योंकि मैं किसी मानी में बहुत नर्म दिल का आदमी नहीं हूँ। मगर फिर भी हर बार जैसे एक लहर-सी उठती थी जो आकर मुझसे टकराती थी और मुझे भिगोकर चली जाती थी। माया तब तक भीतर दरवाजे पर ही खड़ी थी और मैं नहीं चाहता था कि वह या कोई भी मेरे इन बचकाने

आँसुओं को देखे। मैं बाहर सड़क पर निकल गया और घूमने लगा मगर मैं घूम नहीं रहा था, रो रहा था, जैसे रह रहकर कोई मेरे दिल को मसोस रहा हो।

माया जाने को हुई तो उसने पुकारकर कहा—भीतर चलो न, वहाँ क्या कर रहे हो ?

अपनी आवाज की भराहट को छिपाने की कोशिश करते हुए मैंने कहा—अब नींद थोड़े ही आयेगी, अच्छी तरह सबेरा हो गया है....

....और फिर कोई पंद्रह मिनट तक मैं वहीं घूमघूमकर रोता रहा। शायद बरसों बाद मैं इस तरह रोया था। मुझे अपने ऊपर कुछ हैरानी भी थी, कुछ शर्म भी आ रही थी और यह सोचकर कुछ खुशी भी थी कि मेरा दिल अभी मरा नहीं है। मैं नहीं जानता, हो सकता है इसीलिए मैंने अपने आँसुओं को कुछ ढील भी दे रखी हो। मगर इतना मैं जानता हूँ कि वह बेईमान आँसू न थे और शायद वह उस आदमी के दिल की घुटन थी जो इस वक्त मेरे आँसुओं की शक्ल में बाहर आ रही थी क्योंकि मुझे लगता है कि जैसे कभी आग के एक ही गोले से छिटककर यह सारी सृष्टि बनी थी वैसे हो किसी कुम्हार ने गीली मिट्टी के एक ही गोले से सब इंसानों के दिल भी बनाये थे और उनका साज कुछ इस तरह मिलाकर रख दिया था कि एक का दर्द दूसरे के सीने में जाकर बजने लगता है।









